10

मामुलिया

सृजन और शोध की प्रमुख त्रैमासिकी



अंक दस
सं० २०४०
वार्षिक सहयोग : बीस रुपए

विश्व में हिन्दी चेतना जाग्रत करने
हिन्दी को अंतर्राष्ट्रीय भाषा का स्थान दिलाने
में निरन्तर संघर्षरत
के प्रति
मामुलिया परिवार की हार्दिक शुभकामनाएं

मामुलिया

सं० २०४० अंक १०

दीवाली अंक

कविताएं

अज्ञात कृति

लघुकथाएं

कहानियां

हास्य-व्यंग्य

•

सम्पादक : डा० नर्मदा प्रसाद गुप्त

सहायक सम्पादक : डा० वीरेन्द्र निर्झर

सम्पादन सहयोग : डा० बलभद्र तिवारी, डा० कृष्णकुमार हूँका डा० हरिसिंह घोष, वीरेन्द्र शर्मा, 'कौशिक', सुरेन्द्र शर्मा, आशाराम त्रिपाठी

सम्पर्क :

सम्पादकीय : डा० नर्मदा प्रसाद गुप्त, शुकलाना, छतरपुर—४७१००१
व्यवस्थापकीय : बुन्देलखण्ड साहित्य अकादमी, छतरपुर—४७१००१

अपने मन मानिक के लानें
सुगर जौहरी चानें

•

● दसरये के नीलकंठ

एक साहित्यिक मित्र ने आल्हखण्ड विशेषांकों की प्रतियाँ पहुँचने पर लिखा कि दशहरे में तो एक ही नीलकंठ मिलना बड़ी बात है, पर उन्हें तो दो-दो एक साथ मिले। मित्र हैं, इसलिए तारीफों के पुल बाँध सकते हैं और उनसे सभी लोग सहमत हों, यह जरूरी नहीं है। इतना सच है कि इन अंकों से इस बार एक नयी और महत्वपूर्ण शुरूआत हुई है और वह है—आल्हखण्ड के संबंध में कई प्रकार की चर्चाएं। छतरपुर से लेकर दिल्ली तक। कुछ खास मुद्दों को लेकर बहसें चल पड़ी हैं विद्वानों में। यह कोई बहुत गर्व की बात नहीं है कि कौन सही है, लेकिन मामुलिया इतना ही दावा कर सकती है कि उसके इन अंकों ने खामोश मानस में लहरें उठा दी हैं, इस सोच के साथ कि काफी बहस के बाद जो भी निर्णय निकलेंगे, बेमानी नहीं होंगे। इस मानी में इन अंकों को शकुन समझकर नीलकंठ कहा जाय, तो कहा जा सकता है। आपकी मर्जी, चाहे जो कहें। मामुलिया को कोई इतराज नहीं, उसने तो आल्हखण्ड के बारे में पहली बार इतनी सामग्री दी है और अपने दायित्व का निर्वाह किया है।

● दिवारी के चोखें पड़ा मोंटो नइं होत

दिवारी के दिन पशुओं की पूजा होती है, गाय-भैंसों को दुहा नहीं जाता और उनका सब दूध बछड़ों को पिला दिया जाता है। केवल इसलिए कि बछड़ों के लिए दूध छोड़ने का संकल्प ताजा हो जाय। शायद ऐसे ही संकल्पों के प्रतीक हैं ये कवि सम्मेलन, गोष्ठियाँ, महोत्सव और कोई भी सेमीनार या सम्मेलन। जगह-जगह राष्ट्रकवि-जयंती, तुलसी जयंती, महोबा और कन्नौज के आल्हखण्ड महोत्सव, फिर कविसम्मेलनों की बहार तथा विश्व हिन्दी-सम्मेलन। सबका अपना-अपना मौसम और अपने-अपने संकल्प। सवाल यह है कि क्या उन सब ने संकल्पित दृष्टिकोण को आत्सात कर कुछ पाया या

कुछ दिया अथवा ये मात्र प्रदर्शन या कुछ लोगों के अहं की पूर्ति के साधन बनकर रह गए। यदि किसी सम्मेलन से कुछ नहीं मिलता, तो वह बड़ा विषैला होता है और आस-पास के सारे क्षेत्र को दूषित कर देता है। अभी कवि-सम्मेलनों में हास्य-व्यंग्य का ऐसा उराव बढ़ा है कि अक्सर वे फूहड़पन और अश्लीलता की सीमा पर पहुँच जाते हैं और मनोरंजन के नाम पर गंदगी की बौछारें छोड़ते हैं। इस प्रवृत्ति का तुरंत उपचार आवश्यक है। या तो जागरूक श्रोता विरोध करें या फिर संयोजक पहले से ही स्वधन्यगान कवियों को चेतावनी दे दें। कुछ भी हो, हर बार आठ-दस हजारों की धनराशि की होली न जले। अच्छा होता कि इस होली जलने के बजाय कोई रचनात्मक कार्य में वह पूंजी लगती। एक बात और, जिस तरह दिवारी के चोंखें पड़ा मोंटो नई होत, उसी तरह सिर्फ इन आयोजनों में भागीदारी से समाज या संस्कृति या साहित्य का पड़ा मोटा या स्वस्थ नहीं हो सकता। उसे तो हर समय कुछ न कुछ तगड़ा भोजन चाहिए। विश्व हिन्दी-सम्मेलन की पृष्ठभूमि में भी यह सोच अपनी कुछ कीमत रखता है ही।

- **खिसयानों भाँड़ दिवारी गावै**

यह कहावत बहुत पुरानी है, मतलब कि कोई नयी बात नहीं। भाँड़ का काम स्वाँग रचना, पर जब वह खिसयाता है, तब सब कुछ छोड़ दिवारी गाने लगता है। गुस्से में ऊटपटांग बातें करता है। इसी को किसी क्षेत्र में कहते हैं—झूंको भाँड़ दिवारी गावै। 'झूंको' से भी अभाव का अर्थ निकलता है। बात एक ही है। किसी भी सही काम या उद्देश्य के लिए कोशिश करने के बारे में लोग तरह-तरह की बातों में बरगलाते हैं। उन्हें यह मालूम नहीं कि समझदार पाठकगण इस कहावत से पूरी तरह परिचित हैं। मामुलिया को तो ऐसे भाँड़ भी प्रिय हैं, क्योंकि उनके दिवारी गाने से मामुलिया का प्रसार-प्रचार होता है और धीरे-धीरे वे सही दिवारी गाने लगेंगे।

- **दिया तरें अंदयारो**

एक दिन किसी ने कहा था कि बुंदेलखण्ड के लिए झाँसी का बुंदेलखण्ड विश्वविद्यालय एक दीपक की तरह है और सचमुच उससे एक किरन फूटी—बुंदेली परिषद (नाम बड़ा है पर उपनाम से विख्यात)। नाम भी बड़ा और अध्यक्ष भी नामीगरामी विद्वान श्री कृष्णानंद गुप्त। लेकिन बात क्या है कि वह दो साल से बुझी पड़ी है। क्या स्नेह खत्म हो चुका है या बातियों ने अंधेरों के बातचीत कर समझौता कर लिया है। दीपाधार तो दीप की तबियत और नाड़ी छूता ही नहीं, वह तो एक लबादा ओढ़कर ख़ामोश बैठा है, जैसे उसे अँधयारों ने मजबूत कवच पहना दिया हो। आखिर किसे क्या कहा जाय? अंधेरे में तमाम तरह की फुसफुसाहटें, गुमनाम चेहरों से उठती हुई और कई नकली चेहरों की जोरदार जमावट। इस सब का परिणाम क्या होगा? दीपावली आ रही है, दीपक जलेंगे, लेकिन क्या यह दिया अंधेरा ही उगलेगा। कहीं से भी पहल हो। या तो विद्वान कुलपति महोदय या अध्यक्ष महोदय कोई तो इस 'अंदयारे' को पहचाने, फिर बातियाँ (सही बातियाँ) इकट्ठी करे और स्नेह दे। विधान और चुनाव की भाषा को पढ़े, उसमें सुधार करे और फिर अंधेरों से जूझने के लिए नया दीप आलोकित करे। अगर यह सम्भव नहीं, तो वे आगे आएँ जो अंधेरों से कोई दुरभिसंधि न पालकर जूझने की हिम्मत रखते हैं। कहीं ऐसा न हो कि दिये की वह किरन गुम ही हो जाए। ज्यादा अच्छा यह है कि उसे झाँसी विश्वविद्यालय के परिसर तक सीमित न रखा जाय। संरक्षण झाँसी विश्वविद्यालय का हो, पर बुंदेलखण्ड क्षेत्र के सभी विद्वान सहयोगी हों। किसी भी सीमित स्वार्थ या गुटबाजी से हटकर व्यापक दृष्टि से कोई योजना बनाकर उसके कार्यान्वित करने से स्नेह दूना बढ़ता है, रोशनी चौगुनी। आशा है कि शीघ्र ही अंधेरों के चक्रव्यूह टूटेंगे और दिये के अभिमन्युओं की विजय होगी।

सम्पादक

- पत्रिका की वार्षिक सदस्यता : २० रुपये
- पत्रिका की आजीवन सदस्यता : २०० रुपये
- अकादमी की आजीवन सदस्यता : ५०० रुपये
- अकादमी की संरक्षक सदस्यता : १००० रुपये

कृपया स्टेट बैंक के क्रास्ड बैंकड्राफ्ट द्वारा धनराशि भेजकर सहयोग दें।

परख-परस्ताव

● **उपयोगी सामग्री**

आल्हखण्ड विषयक दोनों विशेषांकों के लिए आपको हार्दिक बधाई देना चाहता हूँ। आपने अत्यंत मूल्यवान् एवं उपयोगी सामग्री इकट्ठी की है। अभी पन्ने ही पलटे हैं किन्तु जितना पढ़ा, उसके आधार पर कह सकता हूँ कि अंक बहुत बढ़िया बने हैं। आपके श्रम की सराहना करता हूँ।

—कृष्णानन्द गुप्त, गरौठा, झांसी, उ० प्र०

● **ऐतिहासिक और साहित्यिक महत्व**

आल्हखण्ड विशेषांक और शेषांक उत्सुकता से पढ़ गया। हिन्दी में पहली बार आल्हखण्ड पर दो-ढ़ाई सौ पृष्ठों की सामग्री प्रकाशित हुई है, इसलिए इन अंकों का ऐतिहासिक महत्व तो है ही। साथ में साहित्यिक महत्व भी, क्योंकि आल्हखण्ड के कथा-चक्र, पात्र, वस्तु, भावसौष्ठव, संस्कृति, भाषा, शैली, गायकी आदि विभिन्न पक्षों पर गंभीरता से विचार हुआ है। उनका हर खण्ड और प्रत्येक खण्ड का हर लेख नयी मौलिक आभा बिखेरता हुआ प्रकाश का जगमगाता स्तंभ बन गया है। मेरी बधाई स्वीकार करें।

● **महान कार्य का सम्पादन**

आल्हखण्ड विशेषांक और शेषांक मिला। आपने जो कुछ भी जानकारी अपेक्षित थी, प्रस्तुत कर दी। सचमुच में, यह महान कार्य सम्पादित कर आपने इस लोक काव्य को विद्वानों की दृष्टि में बहुत ऊँचा उठा दिया, जिसे अभी तक लोग एक साधारण-सा ग्रामीण काव्य समझ रहे थे। इसके लिए आपको जितना साधुवाद दिया जाय, उतना थोड़ा है। इसके आधार पर अब विद्वानों में विशेष चर्चा चल पड़ेगी और वह बुंदेलखण्ड के बाहर भी हिन्दी साहित्य में प्रतिष्ठित हो जाएगा।

—ब्योहार राजेन्द्र सिंह, जबलपुर, म० प्र०

● **उससे भी इक्कीस रहा**

'मामुलिया' का पहले 'फाग विशेषांक' प्रकाशित हुआ था जो सराहनीय था। अबकी बार 'आल्हखण्ड विशेषांक' उससे भी इक्कीस रहा। जनकवि जगनिक के कृतित्व को आलोकित करने वाली इतनी सारी ठोस सामग्री एक साथ प्रथम बार ही दृष्टिगोचर हुई।

डा० अयोध्या प्रसाद द्विवेदी का लेख 'वत्सराज के रूपकों में सांस्कृतिक चेतना' मुझे बहुत पसन्द आया। लेखों के क्रम में भी इसे उचित स्थान दिया गया है।

'बनाफर वंशावली' लेख में सूचित पुरैनियाँ नामक स्थान शोध का विषय है। शोधार्थी कृपया यह ध्यान रखें कि हमीरपुर जनपद का पुरैनियाँ—जो सम्प्रति पुन्नियाँ कहलाता है—भी बनाफरों के निवास की दृष्टि से कम महत्वपूर्ण नहीं है। 'आल्हा सम्बन्धित किंवदन्तियाँ' लेख में मनियाँ देव के सम्बन्ध में कुँवर कृष्णप्रताप सिंह द्वारा प्रस्तुत किंवदन्ती मुझे अधिक सारगर्भित जान पड़ी। जगनिक के काव्य में मनियाँ देव की बढ़ी-चढ़ी मान्यता यही सूचित करती है कि परमाल के पूर्वजों के समय से ही ये चन्देलों के कुलदेवता के रूप में प्रतिष्ठित थे।

विशेषांक के प्रारम्भ में पृष्ठ संख्या ७ पर महाराज छत्रसाल का एक पत्र छपा है, जिसके नीचे टिप्पणी में घोड़े की करवारी का अर्थ कटि का आभूषण दिया है। यह सही नहीं है। घोड़े के साज-सामान में करवारी नाम का कोई शब्द बुन्देलखण्ड में इस समय प्रचलित नहीं है। हाँ, 'करयारी' शब्द लोक में अवश्य सुरक्षित है, परन्तु यह कटि-आभूषण नहीं, प्रत्युत लगाम के उस हिस्से का नाम है जो धातु का बना होता है और घोड़े के मुख के भीतर रहता है। संस्कृत में इसे खलीन कहा जाता है। महाराज छत्रसाल के पत्र का आशय इसी खलीन से है। हो सकता है, लेखन अथवा मुद्रण की भूल से करयारी का करवारी हो गया हो। यह भी संभव है कि आज से तीन सौ वर्ष पूर्व इसे करवारी ही कहा जाता हो। आजकल करयारी सर्वत्र लोहे की ही मिलती है परन्तु ऊदल के श्रेष्ठ अश्व बेंदुला की करयारी सोने की रही होगी—यह कोई आश्चर्य की बात नहीं।

शेषांक के लेख 'आल्हाखण्ड के पात्र' में श्री जाहिर सिंह ने ठीक ही लिखा है कि मात्र एक सेनाध्यक्ष होने के कारण आल्हा को पृथ्वीराज, परमाल आदि राजाओं की भाँति इतिहास में उचित स्थान न मिल सका। यह कैसी विडम्बना है कि हमारा इतिहास केवल राजाओं और राजधानियों का इतिहास है। इसी लेख में बारहवें पृष्ठ पर गुखार पहाड़ का नया नामकरण गोखागिरि बड़ा ही अजीब लगा। यदि चलाना ही है, तो फिर सही रूप गोरखगीरि ही चलाइए।

शेषांक के ही 'आल्हखण्ड की उपजीवी 'काव्य-सम्पदा' लेख में 'वीर विलास' के रचयिता ज्ञानी कवि के जन्म स्थान की व्याख्या करते हुए उसे खेड़ी बना दिया गया है जो हर प्रकार से गलत है। जलालपुर से सटा हुआ

खेड़ी नाम का कोई ग्राम है ही नहीं। वस्तुतः ज्ञानी कवि की जन्म भूमि खण्डौत है, जिसे उन्होंने अपनी कृति में खँडवत कहा है। खण्डौत की प्राचीनता की चर्चा विशेषांक के पृष्ठ संख्या ११० पर देखी जा सकती है।

'मामुलिया' के प्रारम्भिक अंकों में लेखों के अन्त में लेखकों के पते भी छपे रहते थे। खेद है कि अब वह व्यवस्था समाप्त कर दी गयी।

कुल मिलाकर अबकी बार का विशेषांक तथा शेषांक दोनों ही मनोरम पुष्पों के गुलदस्ते हैं। हाँ, स्थान-स्थान पर मुद्रण की भद्दी भूलों ने सम्पादन के श्रम और प्रकाशन की शान में अवश्य ही बट्टा लगाने में कोई कसर नहीं उठा रखी।

—डा० हरगोविन्द सिंह
ब्रह्मानन्द महाविद्यालय
राठ (हमीरपुर) उ० प्र०

● आल्हखण्ड के पात्र

श्री जाहिर सिंह के लेख 'आल्हखण्ड के पात्र' पृ० २३ क्रम ५७ में जयचन्द को रतीभान का भतीजा बताया गया है, जबकि पृष्ठ ३३ क्रम १३५ में जयचन्द का भाई और लाखन का पिता लिखा गया है। हरिकेश कवि कृत 'जगतराज की दिग्विजय' (संभवतः दोहा क्रम ६०६) में लाखन का पिता मुंसराय अंकित है। अतएव रतीभान और लाखन के पिता के सम्बन्ध में एक भ्रम उत्पन्न हो जाता है। इसी तरह पृष्ठ ३० क्रम ११२ में मछला को आल्हा-ऊदल की माँ कहा गया है, जबकि आल्हखण्ड में मछला को आल्हा की पत्नी बताया गया है। यह भी एक विवादग्रस्त विन्दु है। आश्चर्य तो यह हुआ कि आल्हखण्ड के प्रमुख पात्र को 'मीता तालन' (पृष्ठ ३२ क्रम १२५) लिखा गया है, मीरा होना चाहिए कि मीर, यह विद्वानों के विचार पर छोड़ता हूँ।

—संतोष पटैरया, डाकबंगला मार्ग, महोबा, उ०प्र०

● अनूठी प्रस्तुति

सामग्री कम होते हुए भी उपयोगी बहुत है। श्रीमती पाठक का लेख शोधात्मक पद्धति से हटकर मात्र सामान्य व्याख्या है, अतः इस अंक में खटकता है। कोई शोधात्मक लेख बुंदेली में और होता, तो अंक में चार चाँद लग जाते। सम्पादकीय की प्रस्तुति सचमुच अनूठी है। जिसने भी देखी प्रशंसा किये बिना नहीं रह सका। मेरे हृदय से तो ये पंक्तियाँ निकल पड़ीं—

मामूली न रहि मामुलिया हर ओर पैर फैलाय रही।
बुंदेली-हिन्दी-संगम के पावस यशगीत सुनाय रही।

किसको आश्चर्य नहीं होगा दो वर्षों में इतनी आगे,
बुंदेलखण्ड की कीर्ति-ध्वजा भारत भर में फैलाय रही॥

—बी० डी० घोष, म० प्र० नागरिक आपूर्ति निगम, सतना

काव्यकला कमनीय सी कामिनी मोहनी मूरत मोहनी हुलिया
कवि-लेखक-रत्न परोरवे सूप अनूप इसे जनि जान सिपुलिया।
बुंदेलि की काव्यकलान के शोध को मार्ग प्रशस्त न जानिय कुलिया
बग 'मिश्र' कहै अपने मन की मामुलि या छोटी नहीं 'मामुलिया'॥

—रामकृपाल मिश्र, छतरपुर

पुरसन खाँ राधारानी

अब तो मामुलिया भई सयानी, सबई कोऊ नें जानी
एक तो भाव मनोहर ईके दूजे मीठी बानी।
तिरियन खां भइ सखी और पुरसन खां राधारानी।
करनी गाउत वीर बीरन की, हीरन मोल कहानी।
विन्ध्यभूम की महमा ई में, मर्यादा कौ पानी।

कुमारी रजिया सुल्तान, रानी तलैया, छतरपुर

● गाउँन लगी वीरन की करनी

आपुन की जा नौनी नई नवेली अलबेली मामुलिया एकई डेढ़ साल की भई कै ई खां अपुन की किरपा सें ई बुन्देलखण्ड के धरती को ऐसो पानू लगो कै जैसो अबैलौं आला-ऊदल खां छोड़ कें और काऊ खां न लगो हुइये। हमखां तो लगत है कै येई सें जा अपुन की हस्तोरू और सबको मन हरवे बारी प्यारी मामुलिया अब तो झांसी की रानी बनके प्यारे सुर में—

गाउन लगी वीरन की करनी, मामुलिया मन हरनी।
आला-ऊदल की महिमा न गई काऊ सें बरनी।
बैरी रन में ऐसे कतरे जैसें बार कतरनी।
कीरत पाई कीरत गाकें मामुलिया मन भरनी।

—कुमारी शकुंतला त्रिवेदी, कोतवाल के पास, छतरपुर

● अब आल्हा कौ आल्हा गाकें सबखाँ रई अमरज में डार

विन्ध्यभूम की धवल धरा में, मामुलिया नें लओ औतार।
तार सौ पौंचो ईकौ सबलौं, ऐसो डारो गजब गुजार॥
जार सौ फैला राखो सबरें, सब पै जादू सौ दओडार।
डार असर दओ सबके ऊपर, जित्ते कवी कहानीकार॥

रंग रंगीली छैल छबीली, विन्ध्यभूम की जा सिंगार।
जब सें अंक निहारे ईके, उर मे छाई खुशी अपार।।
कबहूँ गावै गीत बसन्ती, कबहूँ गावै फाग फुहार।
कबहूँ प्यारी सुजस कहानीं, कबहूँ गावै राग मल्हार।।
अब आल्हा कौ आल्हा गाकें, सबखां रईं अचरज में डार।
कीरत गाउँन लगी बीरन की, जिनसे रच्छा भई हमार।।
'मामुलिया' कौ आल्हा सुनकें खुसयाली भई अपरम्पार
देसकला उर संस्कृती कौ, अब तौ हो जानें उद्धार।
भलौ करो जौ सम्पादक जू, जा 'मामुलिया' दई निकार।
ईकी प्यारी मुस्काहट सें, झरें भाव के सुमन अपार।।
कौन तरां सें करें बड़ाई, छाई मनमें खुसी अपार।
भाव "मनोहर" बुन्देली के, मानों मार रहे किलकार।।

—कुंजीलाल पटेल 'मनोहर', बसारी, छतरपुर

दिवारी लोकगीत

राम दिवारी खेल रये

कोऊ बसें इड़ियन छिड़ियन, कोऊ बसें मैदान रे।
माँ बगराजन बसें अलायदीं, लाल धुजा फेरांय रे।।
राम दिवारी खेल रये, ग्योंड़े धंद गये छ्यांवरे।
दूजी नाचें माई सारदा, तीजे अहिर कौ लाल रे।।
ढुलकी के बजवैया तोरें, आई न ओंठन रेख रे।
एक बजौरी ऐसी बजादे, मोरी नग नग फरकें देंय रे।।
राधा निकरीं पनियाँ हाँ, भई दाहिने छींक रे।
कै फूटे सिर घैलना, कै मिलें नन्द के लाल रे।।
अेकैं सखियां पांव पलोटैं, अेकैं मीड़ें अंग रे।
अेकैं सखियाँ चूमा लेबैं, अेकैं सोबैं संग रे।।
बिछिया बाके पाँव पलोटैं, चोली मीड़ें अंग रे।
साँकर बाको चूमा लेबैं, पाटी सोबैं संग रे।।
एक गली की दो गलीं, कड़ कौन गली हो जांव रे।
बिछिया मोरी बाजनी, रसवादी सवई जौ गांव रे।।
पत्ता टूटो डार सें, लै गई पवन उड़ाय रे।
गोरी छूटी छैल सें, गलन गलन पछताय रे।।
बार बार हटकों स्वामी तोय, बखरी में लगा ना नीम रे।
सुआ निबौरी काट गओ, चोली में पर गये दाग रे।।
बिन पार की पोखरी, बिना कली कौ फूल रे।
बिना माता की लाड़ली, तीनों लाओ ढूंड रे।
छँई कान दो पूंछिया, दस गोड़े मुख चार रे।
अेकै मुख जिभिया नहीं, पंडित करें विचार रे।।
बारा लोचन बीस पग, छै मुख छ्यानबे दंत।
ई कौ अरथ बताइओ, तब कौर टोरियो कंत।।

—गायक सुक्कू गड़रिया, नन्ने गड़रिया एवं
हीरालाल कुशवाहा छतरपुर से
डा० हीरसिंह द्वारा संकलित

दिवारी ओर गोवर्धन-पूजा

● गुमान त्रिपाठी

बीती सो पूनौ सरद की सुख दंपती आनंद भरी ।
अनात[1] कातिक मास सजनी सकल ब्रज की सुंदरी ।।
जामनी के जाम चौथे कढ़त अलबेली अली ।
सेत सारी पहिर कै असनान सागर कों चली ।।
उठत आवै भवन तै सब दंपती सुखदाइका ।
चहुँ ओर खोरन भुकत आवैं गावतीं बजनाइका ।।
गावती हर ध्यावतीं असनान सागर में करैं ।
कढ़त आवैं जलधि में तैं करन दोऊ घट धरैं ।।
पूजती हैं द्विजन देवन घटन के सेवन करैं ।
पहिर साज सिंगार भूषन गहन नाना विधि करैं ।।
गोय[2] फूलन चौसरा[3] कर जोर घट पै धरत हैं ।
जामनी के जाम चौथे काम येते करत हैं ।।
सजनी न देखत मान जिनकौ जरत है महताब सी ।
चंद कैसे बदन जिनके इंद्र कैसी उरवसी ।।
गावतीं सुख साज सजनी रोकतीं ब्रज की गली ।
बढ़त हिय में मोद आनंद आवती ग्रह को चली ।।
संग निज निज दासनी[4] अपने निवासन जात हैं ।
देख जिनके पीव सजनी बिनहि मोल बिकात हैं ।।
सजनी दिवारी मान घर घर दीपमाला को धरैं ।
गांठ दंपति जोर जहँ तहँ दान बिप्रन को करैं ।।
सजनी सुराती पूज घर घर दंपती सुख मो[5] रहीं ।
हम सुनौ सजनी दीन अबला मैन के बस हो रहीं ।।
देख घर घर दीपमाला लगत मोंहि दमार[6] सी ।
मदन हम पै कोप कीनौ देत हिय में मार सी ।।
अजहूँ न आये घातकी सजनी हमें या गति भई ।
देव दिन से कटत हमकों सबद पापिन दित गई ।।

(अज्ञात कृति 'बारामासी' से)

जुरि वृद्ध गोप समाज बैठ नंद उपनंदै तबै ।
बुधवान मति सज्ञान जे त्रैकाल की जानत सबै ।।
तहँ नंद मन आनंद बोले सकल ब्रजवासी सुनौ ।
महगाक्ष[7] पावनजज्ञ को आरंभ करनो है गुनौ ।।
करि पूय[8] पुरी पिराक[9] सुंदर पाक नाना विध रचौ ।
दधि दूब अच्छत फूल फल लै सौंज[10] पूजा की सचौ ।।
गहि मान गोपी गीत गावहिं प्रेम मन तिनके पगे ।
फूले फिरत सब गोप जहँ तहँ आइ कारज में लगे ।।
प्रभु बिस्व जान अजान इमि पूछत पिता कों आनिकैं ।
पितु कौन कारज गोप बीधे कौन उत्सव मानिकैं ।।
तहँ नंद भोरे प्रेमबोरे बचन सुत सों यों कहे ।
सुरपाल सुभ हम जस कीजत सकल जन तामें नहे ।।
जिन हुकम सों परजन्य बरसत अन्न सों सब निर्वहैं ।
फल फूल बन जल ओषधी तिन पाइ देही सुख लहैं ।।
सुन बचन ते भगवान बोले पिता सों हित हेरि कैं ।
पितु हौं कहों जो सुनहु बानी सकल सास्त्र नबेरि[11] कैं ।।
फल रूप कोऊ पुरुष पूरन ताहि नहिं पहिचानिहैं ।
दुख सुख सबै ये कर्मप्रेरक यहै बेद प्रमानिहैं ।।
जग सब बनिज ब्योपार में गो बनिज हमरें सार है ।
रम सदा गोवर्धन बिसैं बन चरहिं करहिं बिहार है ।।
भरि अयन[12] कों पय स्रवहिं धारा होत तिहि अपनो भलौ ।
जिहि की न पूजा करत हौ पितु कौन मति में तुम चलौ ।।
बुधजन बुलावो वेद विधि रचि अगिनि आहुति दीजिये ।
धन धान्य भोजन दान दै संतुष्ट भूसुर[13] कीजिये ।।
पय पाक करि पकवान भरि गिरि पूजिये सुख साजिकैं ।
फिर दै प्रदक्षिन गान करि ढफ संख भेरी बाजिकैं ।।
सुन बचन प्यारे नंद जू उर मोह ममता में भरौ ।
कहिकैं सबन सों सुख लह्यो मोहन कह्यो सोई करौ ।।
नर नारि सज सज भार भरि भरि पाक नाना विध लयौ ।
कर होम पूजा गिरि करी फिर मान बिप्रन कों दयौ ।।
गिरि गेरहीं उत्साह सों सुर उच्च प्रभु गुन गावनैं ।
तहँ कहिव जो जो करिब सो मन हरे सुंदर स्याम नें ।।

विविध भांति बाजे बजत, नचत गोप करि चोप ।
यह उत्सव देखत तहाँ सक्र करिब अति कोप ।।१०।।

(कृष्णचंद्रिका से)

टिप्पणी : १. नहाना, स्नान करना २. गूंथकर ३. चार लड़ियों वाला ४. दासियाँ ५. भिगोयीं ६. वन की आग, दावानल ७. इन्द्र ८. पुआ ९. गुझिया का बड़ा आकार, गूझा १०. सामग्री ११. छाँटकर १२. धन का वह भाग जिसमें दूध रहता है । १३. ब्राह्मण।

बुन्देली लोकगीतों में भाई-बहन

● जयन्ती देवी

जन्मजात आत्मीयता और पवित्र प्रेम के धागों में बँधा हुआ भाई-बहिन का नाता हमारी संस्कृति की मूल्यवान निधि है । नारी के शील को सबसे बड़ा संरक्षण भाई से ही प्राप्त होता है, इसीलिए वह भाई की प्राप्ति के लिए बड़े-से-बड़ा तप करने को तैयार रहती है । बुन्देलखण्ड में गायी जाने वाली कारसदेव की गोटों में यही भावना व्यक्त हुई है—

अरे, बारा बरसें बिटिया नें संकर जी ढ़ारियो,
तेरों पर गई सोमती अमास
अरे, तासें बिटिया बिरत रही उपास ।
तारी खुल गई गुरू भोलानाथ कै—
बिटियां माँग लेन वरदान ।
तीन तिरवाचा बिटिया हरारही भोलानाथ पै ।
अरे, न मोखें रिन चाहिए, न धन चाहिए,
भइया चाहिए भुजबल दाहिनी बाँह कौ ।

बहिन के लिए भइया सचमुच दाहिनी भुजा ही है । सामंती युग में जब युवती कन्याओं का बलपूर्वक अपहरण करने की कुप्रथा थी, तब बहिन की रक्षा के लिए भाई की चौड़ी छाती और बलशाली भुजाएँ ही आगे रहती थीं । इसी की स्मृति बनरी-गीत में आज भी सुरक्षित है—

हिरनी दूर चरन जिन जाव, बहेलिया गोली मारत है
बेटी दूर खेलन जिन जाव मुगल-दल आवत है
हम तौ भइया की ओली भग जायँ, मुगल-दल काह करै !

बहिन को अपने भाई के बल पर गर्व रहता है । वह जानती है कि मेरा भाई इन्द्र के अखाड़े में खेला है, वह बड़े से बड़े आक्रमणकारी से जूझने में समर्थ है । बुन्देलखण्ड की ललनाएँ अपने बीरन के पराक्रम के राछरे गाती हुई अघाती नहीं हैं—

सावन गरजें भाईभादों में बरसें, जमी है अखारिन दूब
बीरा मोरे, इन्द्र अखारिन खेलियो ।

वा दूवा मोरी भैंसन नें चर लई, देत गघर भर दूध, वीरा मोरे....
वे दुधुवा मोरे बिरना पियत हैं, करत मुगल सें जूझ, वीरा मोरे...

और जब भाई का विवाह होता है, तब बहिन के उल्लास का क्या कहना ! जैसे ही वह वीरन को तेल चढाते बैठती है, सारा आँगन दिव्य स्नेह की गन्ध से गमक उठता है—

कहना बाई तेल चढ़ाबें, कौन केरी बेंदुलिया
बिन्नू बाई तेल चढ़ाबें, भइया केरी बेंदुलिया ।

जिस समाज में दहेज की कुरीति ने दानवी रूप धारण कर लिया हो, वहाँ लड़की के हाथ पीले करना आसान नहीं होता । क्वाँरी बेटी की चिंता माता-पिता के साथ भाई को भी निरन्तर सालती रहती है । पुरा-पड़ोस में किसी लड़की के विवाह में वस्त्राभूषण का चढ़ाया चढ़ रहा है, परन्तु जिनके घर में धनाभाव से वेटी क्वाँरी बैठी है, वे ऐसे अवसरों का पूरा आनन्द कहाँ ले पाते हैं—

चढ़त चड़ाए लाड़ली के, चलौ देखन चलिए ।
एक न देखें उनके बाबुला, जिनकी कन्या है क्वाँरी,
एक न देखें उनके बीरना, जिनकी बहिनी है क्वाँरी ।

भाई प्रतीक्षा लगाये बैठा रहता है कि कब कन्यादान का शुभ मुहूर्त आये और मैं इस सत्कार्य में पिताजी को सहयोग देकर अपना जीवन धन्य करूँ । कन्यादान के बुन्देली गीत में भाई का यही चित्र प्रस्तुत किया गया है :—

कौन के हाथ गड़ुवना सोहै, किनके कुश की डार, हो रामा ।
भाई के हाथ गडुवना सोहै, वाबुल-हाथ कुश की डार हो रामा ।

पुत्री पराया धन है । उसे सुपात्र को सौंपकर पिता तो अपना भार हल्का कर लेता है, परन्तु बेटी का धीरज कैसे बँधे—

बाबुल भेज रहे परदेस, मइया के आँगन छूट चले ।
भौजी अंगना में समझा रहीं,
काहे इतनौ रुदन मचा रहीं,
पूरे चार दिन खें जा रहीं,
वीरन भेज बुलाऊँ एई देस, मइया के आँगन छूट चले ।

बस बीरन ही सबसे बड़ा अवलम्बन है । इसलिए बहिन अपने सुहाग के साथ ही भइया और भाभी की जोड़ी को अमर बनाने की प्रार्थना भगवान से करती है—

कि ए जु, अंगना में ठाँड़ी हरि सें बिनती करत हैं, जोड़ी न बिछुरै हमार ।
जोड़ी न बिछुरै भौजी-भइया की, उन बिन आवन न होय ।

और फिर आ जाती है—विदा की वेला । परिजनों को लगता है कि चावलों से भरी हुई चँगेल के साथ चिरइया बेटी किसी अनजान प्रदेश की ओर उड़ी जा रही है—

'मोरी चाँवरन भरी है चँगेल, चिरइया बेटी उड़ चली, मोरे लाल ।
उनके बिरना नें बोले हैं बोल, निभावन बेटी घरै चली, मोरे लाल ॥'

भाई अपनी प्यारी बहिन को भरसक सान्त्वना देता है । उसे विश्वास रहता है कि मेरी बहिन 'निभावन' है । वह जहाँ जा रही है, जहाँ की परिस्थितियों के अनुसार अपने को ढाल लेगी तथा जो पराये हैं, उन्हें अपना बना लेगी । किन्तु बेटी के डोली में बैठते ही करुणा का सागर पूरे वेग से उमड़ पड़ता है और विदाई के गीत में भाई का कलेजा टूक-टूक हो जाता है—

'कच्ची ईंट बाबुल देहरी न धरियो, बेटी न दइयो परदेस, मोरे लाल ।
माता के रोयें नदियाँ बहत हैं, बाबुल के रोयें वेलाताल मोरे लाल ।
भइया के रोयें छतियाँ फटत हैं, भौजी के जियरा कठोर मोरे लाल ।'

ननद की विदा के अवसर पर रोती तो भौजाई भी है, परन्तु भाई के हृदय की वेदना से उसकी क्या तुलना । ससुराल गयी हुई बहिन को सावन के महीने में अपने भाई तथा मायके की याद सबसे अधिक आती है । नव विवाहिता लड़की कम-से-कम पहला सावन तो अपने मायके में ही व्यतीत करने को आतुर रहती है—

आसों के सावन माईघर करों राजा, पर के करों ससुरार,
माई मोरी, बिरन लिबउवा पठवाइयो ।
ऊँचे गुरज चढ़ हेरें सुभद्रा, अजहुँ न आये मोरे बीर, माई मोरी ।

माता-पिता, भाई और भाभी किसने क्या-क्या उपहार दिये, उसकी स्मृति भी सावन के गीतों में इस प्रकार गूँज उठती है—

सावन सेंदुरा माँग भरी बिरना, चुनरी रंगा दई अनमोल,
बीरा मोरे, माई कौ देस दिखाइयो ।
माता नें दीन्हे नौ मन सुनवाँ, बबुला नें लहर-पटोर,
बिरना नें दीन्हे चढ़त के घुड़ला, भौजी गरे के हार,
बीरा मोरे, माई कौ देस दिखाइयो ।

भाई गृहस्थी के काम-धंधे में व्यस्त हो गया है, परन्तु माता बेटी को घर पर न पाकर बेचैन हो उठती है । वह अपने पुत्र को बहिन के यहाँ जाने के लिए धँधेरे के राछरे के माध्यम से इस प्रकार प्रेरित करती है—

सबकी बहिनियाँ झूला झूलें, तुम्हरी बहिन परदेस,
सुनियो, असल धँधेरे कौ राछरौ ।

चिरइ बिसूरै बेटा अपने खंजुआ, बहिन बिसूरै परदेस,
सुनियो, असल घँधेरे की राछरो।

और भाई बहिन को लिवा लाने के लिए चल पड़ता है। उधर बहिन बैठी तो ससुराल में है, परन्तु उसे चिन्ता लगी है अपने भाई के खेतों की। वह जानती है कि मेरे भाई के पास बढ़िया कछार है, जिसकी भूमि सोना उगलती है। ससुर जी के यहाँ तो केवल डँड़ियों-ढकरियों वाली रही जमीन है। हे काली बदरिया, हे काले मेघ, तुम मेरे बीरन के देश में वर्षा करना न भूल जाना—

कहना सें उमहीं माई कारी बदरिया, कहना बरस गये मेह,
बदरिया, बरसौ बिरन के देसवा।
ससुरा की जुत गई डँड़ियाँ-ढकरियाँ, बिरना के जुते कछार,
बदरिया, बरसौ बिरन के देसवा।

गर्भवती नारी को जहाँ विभिन्न प्रकार के पदार्थ खाने-पीने की इच्छा होती है, वहाँ अपने भाइयों को देखने की इच्छा प्रबल हो उठना भी स्वाभाविक है। एक सोहर गीत में उसकी यही लालसा मुखरित हुई है :—

बाहर सें आये श्री साह, हँसइ हँस बोले बिहँस कर बोलें हो।
धना, जो-जो भइया तुम चाहौ, ओई बुलवा देबीरे।
भइया चाहिए मामन के और फुवन के हो,
रामा, चहिए मताई के जाए, उन्हें बुलवा दइयोरे।

जब बहिन के यहाँ कोई शादी-ब्याह होता है, तब भाई वस्त्रोपहार लेकर पहुँचता है, जिसे 'चीकट' कहते हैं। भाई की उपस्थिति के बिना मण्डप का सूनापन कितना खटकता है, यह चीकट गीत के बोलों से स्पष्ट है—

'चलौ देवरनियाँ, चलौ जिठनियाँ, सो धना के बीरन ल्वा ल्याइए।
लख मोरे देवरा, लख मोरे जेठा, सो मड़ला हैं सूने प्यारे बीर बिना।'

कहते हैं, कुंवर हरदौल ने शरीर-त्याग करने के उपरान्त भी चीकट की रस्म पूरी की थी और अपनी बहिन कुंजावती को दर्शन दिये। जब भाई चीकट लेकर बहिन के द्वार पर उपस्थित होता है, तब कुंजा और हरदौल की स्मृति आज भी बुन्देलखण्ड के जन-मानस को भाव विभोर कर देती है—

दोरे में ठाड़ी कुंजन बाई, कि बोल मोरे भाई।
ओ मोरे बिरना, बन के हिरना, चीकट की बेराँ तुम दइयो दिखाई कि बोल मोरे भाई।''

इस प्रकार हम देखते हैं कि बुन्देली लोकगीतों में भाई-बहिन का स्नेह-सम्बन्ध स्थान-स्थान पर बड़े ही मार्मिक ढंग से अभिव्यक्त हुआ है।

—अतरौलिया, राठ, जिला हमीरपुर (उ० प्र०)

विशेष लेख/एक अलौकिक दीप

कारसदेव

● रामइकबालसिंह 'राकेश'

कारसदेव की लोकगाथा के अंश-विशेष को मैंने अगस्त, १९४७ में झाँसी के ग्यासीलाल अहीर, जग्गूराम गड़रिया और बड़ागाँव के पर्वत गड़रिया से सुन कर लिपिबद्ध किया था। विन्ध्यप्रदेश के गूजरों, अहीरों और गड़रियों में कारसदेव की कथा से सम्बन्धित अनेक गोटें प्रचलित हैं। कहा जाता है कि राजू गूजर ने दिल्ली के पृथिवीराज चौहान के साथ अपनी कन्या ऐलादी का विवाह-सम्बन्ध करने से इन्कार कर दिया था। राजू गूजर दिल्ली की सीमा के अन्तर्गत राजौरगढ़ में रहता था। एक दिन वह अपनी जाति-बिरादरी से विचार कर पृथिवीराज के डर से वहाँ से भाग निकला, और माना लुहार की हरियल झाँझ में अपने परिवार के साथ रहने लगा। कारसदेव जब बड़ा हुआ, तब उसने पृथिवीराज को कई युद्धों में परास्त कर और उसकी कन्या का हरण कर अपने धर्मपिता राजू गूजर के अपमान का बदला लिया। ऐतिहासिक दृष्टि से कारसदेव की कीर्तिगाथा का यह अंश प्रामाणिक नहीं माना जा सकता है। लोकगाथाओं में नायक के शौर्य-पराक्रम का सर्वत्र अतिशयोक्तिपूर्ण विवरण मिलता है।

गूजर राजू की कन्या ऐलादी ने महादेव की बारह वर्षों तक आराधना की थी। महादेव प्रसन्न होकर राम, लक्ष्मण, भाग्य-विधात्री बैमाता और ब्रह्मा के साथ हिंगलाज की देवी के पास गये। देवी ने महादेव को एक कटा हुआ सिर दिया। ऐलादी को महादेव से वरदान में वही कटा हुआ सिर प्राप्त हुआ। उसने उस सिर को पाठे पर पटक दिया। उससे वहाँ एक कमल का फूल पैदा हो गया, संध्या-समय वह फूल कंगीरा ताल में दीख पड़ा। जब ऐलादी उस तालाब में स्नान करने गई, तब वह फूल उसके हाथों में आ गया। उसने उस फूल को जलघरा पर रख दिया। आधी रात के समय वह फूल तेज से प्रकाशित नवजात शिशु के रूप में परिणत हो गया। सारो माता उसको 'कारस' कह कर पुकारने लगी।

२

कारसदेव के जन्म के अवसर पर—

'सवा पैर कंचन बरसे हरियल झाँझ में
कलि में हो गये उजयारे
ढै गये कंगूरा मानाराव के
जब कारे ने लये अवतार
वारे जनमत फुसर मड़ैया कंचन की हो गई
और मिटे करम के दाग
वारे जनमत धरनी के धर डगे
डगे परवत धरनी पातार'

—हरियल झाँझ में सवा पहर तक कंचन की वर्षा होती रही। कलि में उजेला हो गया। तृण की झोंपड़ी कंचन के रूप में परिणत हो गई। मानाराव के दुर्ग के कंगूरे दह गये; और पृथिवी, पाताल तथा पर्वत काँपने लगे।

सूप में शिशु कारसदेव को नींद नहीं आती थी। इसलिये ऐलादी ने उसके लिये चन्दन का एक पालना बनवा दिया। बड़ा होने पर कारसदेव ने अपनी धर्ममयी शक्ति के प्रभाव से बारह वर्षों के नेत्रहीन और कुण्ठग्रस्त मैगल नामक एक कुम्हार को रोगमुक्त कर दिया। उसके इस अलौकिक चमत्कार को देखकर जनसाधारण विस्मित हो गये। मैगल ने कारसदेव के लिये मिट्टी का एक बछेरा बना दिया। उसका नाम लीला था। एक दिन आधी रात के समय वह मिट्टी का वरदानी बछेरा टापें बजाने लगा। कारसदेव उस बछेरे के पास पहुँचा, और उसकी पीठ पर हाथ फेरने लगा। लीला ने कहा—'यदि तेरे अतिरिक्त मेरे ऊपर किसी दूसरे की सवारी हुई, तो हम दोनों पत्थर बन जायेंगे।'

एक दिन कारसदेव ने अपने भांजा नयनपाल से कहा कि—'मैं अपने पराक्रम से शत्रु का सामना करने जाता हूँ। तुम अपनी अँगुलि के अग्रभाग को रक्तमय तेल से प्रज्वलित कर मेरे मंगल के लिये पूजा करो।' नयनपाल ने कहा—'बातें मत बनाओ। सार्थक वचन बोलो। मुझसे तुम्हारी सेवा नहीं होगी।

'तेरी सेवा वे करें छोरें माई-बाप
तिरिआ छोरें सतभाँवरी छोरें कुटुम परिवार
तेरी सेवा कैयो ज्यों खाँरे की धार
जित पकरे छोआ लगें ज्यों डोली का पान'

—तुम्हारी सेवा वे करें, जो माँ-बाप को छोड़ दें, जो अपनी सतभाँवरी तिरिया और कुटुम्ब-परिवार को छोड़ दें। तुम्हारी सेवा खाँड़े के उस तेज

किनारे के समान है, जो छू जाय तो काट डालें। अथवा तुम्हारी सेवा पानदान में बन्द उस पान-पत्र के समान है, जो हवा के झोंके से कुम्हला जाता है।

कारसदेव ने कहा—

धरती के दिअला करो नन्दन-वन की बाति
चालर का घियला होमियो खोर बना दो माजे हार'

भूमण्डल को दीपक और नन्दन-वन को बाती बना कर भैंस के घृत से मेरी पूजा करो और पशुओं को घेर कर एकत्र रखने के लिये जंगल के बीच खोरे बनवा दो।

इस प्रकार कारसदेव ने नयनपाल को अपनी बातें समझा दीं। युद्ध में जाने के पहले उसने घोड़े को नहलाया और उसको पलैंचा, कलँगी आदि से सज्जित करने के लिये अपने अनुचर को आदेश दिया।

कारसदेव के घोड़े लीला का वर्णन—

'ककई मंगाई हाती दाँत की रोम-रोम दिये निरवार
बारन-बारन मोती बेंदे किस बारन हीरा लाल
चारउँ डँड़ मैंदी रची, पूँछ रची सर बोर
चार पधारक पुट्ठन धरीं, बगलन लिखीं चकोर
हरे पाट की हरिया लिखीं और लिखीं वनमोर
कठनपुतरिया ढील कूँख में, रूपे की बांदी नाल
लील के गंडा गुदियन गुवे मन लिपरे कारे नाग
सवा लाक की कलँगी धरीं लीला के माज लिलार
कलँगी डुले मोती डगे मन गंगा हेरा लेये
धरे पलैंचा मकतूस के लोहे की दई लगाम लगाय।'

कारसदेव ने बाग से मेंहदी मँगवाई और हाथीदाँत की बनी कंघी से उसके अंग-अंग के रोम-रोम को अलग-अलग करा दिया। उसके रोम-रोम में मोती पिरो दिये। रोम-रोम में हीरे-लाल जड़ दिये। चारों खुरियों के ऊपर बारीक पीसी मेंहदी रचा दी। पूंछ के बालवाले अगले भाग को भी रंग में शराबोर कर दिया। पुट्ठों के ऊपर चार टिपकिया अंकित कर दीं और बगल में दोनों ओर हरे रंग के तोते, वनमोर और चकोर पक्षी का चित्र लिख दिया। कारसदेव ने घोड़े को नजर से बचाने के लिये उसकी कोख में 'कठनपुतरिया' लिख दी। सूमों में चाँदी की नाल बँधवा दी। घोड़े की ग्रीवा में काले रंग के गंडे ऐसे लगते थे, जैसे काले नाग लिपटे हों। उसने घोड़े के सिर पर सवा लाख की कलँगी रख दी। कलँगी हिल रही है। मोती झोंके खा रहे हैं, और मन की गंगा हिलोरें ले रही है। उसकी पीठ पर मखमल का पलैंचा

कस दिया, और मुँह में लोहे की लगाम लगा दी।

'ठियरे बछेरा दै रैओ
वाको चाल लगे थनमान
सजे बछेरा धीरज ना धरे
टापन फोरैं डारें पातार
उड़ओ जावै बछेरा इन्दरलोक कों'

बछेरा सज्जित होकर 'बांगर' के लिये उत्तेजित हो उठा। वह आगे-पीछे टापें बजाने लगा। सजा हुआ बछेरा अधीर हो उठा। टापों से पाताल को फोड़ने लगा, और उछाल मार कर उसने इन्द्रलोक में उड़ जाना चाहा।

कारसदेव का सैन्य वेष—

'पैरीं कतइयाँ रगबगी बकतर सेत सुपेद
टोप झलरिया सिर दये पीछैं दई गौंड़ की ढ़ाल
तेगा बाँधे गुजरात कों जा पै धरी दुधारा धार
छप्पन छुरियाँ फेंटन दई साज भये तैयार
सेल लफारो लै लाओ लाहोरी लाल कमान
कारसजी ऐसे सज्यो मन उग रै दूजो भान'

विचित्र फौजी कुर्त्ता, सफेद बख्तर, सिर पर झालरदार टोप, पीठ पर गैंडे की चादरवाली ढाल, कटिबन्ध में कसी चमड़े की पेटी में गुजराती दुधारा तेगा और फेंटे में छप्पन छुरे बाँधकर कारसदेव तैयार हो गया। उसने हाथों में लाहौरी लाल कमान और भारी सेल धारण कर ली। कारसदेव सामरिक परिधान में दूसरे सूर्य के समान जान पड़ने लगा। अस्त्र-शस्त्रों से सज्जित होकर कारसदेव घोड़ों की पीठ पर आरूढ़ हो गया। यह देख कर उसकी बहन ऐलादी ने कहा—

'काँ को दौरा लग रये, काँको साज भये तैयार
काँ को बछेरा दुखारू कर दये भेद दियो बतराय
काँ को पैरीं चूड़ा साँकरैं, काँ को कसैं हतयार
कै मेंड़िया ने मेंड़े दावें, कै भुमिया ने दावै गाँव'

तुमने कहाँ जाने की तैयारी कर ली? क्यों बछेरे को कष्ट दिया? कहाँ जाने के लिए तुमने रण-कंकण बाँध लिये? क्या किसी ने तुम्हारे खेत की मेंड़ दबा ली? अथवा किसी भूमिपति ने तुम्हारे गाँव पर अधिकार कर लिया?

कारसदेव—

हौंसन पैरीं चूरा साँकरैं रन को कसैं हतियार
रन के कंकन बाँदे हात में साज भये तैयार

हौंस में ही मैंने रण-चूड़ा पहना है। रणक्षेत्र में जाने के लिये अस्त्र-शस्त्र धारण किया है, और हाथों में रण-कंकण बाँध कर अपने को सजाया है।

ऐलादी को कारसदेव की पराक्रम शीलता पर भरोसा न था। अतः वह पहले कारसदेव को गढ़ टौंड़ के जांट सरदार के विरुद्ध युद्ध करने की सम्मति नहीं देती है, लेकिन बाद में वह उसके प्रस्ताव को स्वीकार करती है। ऐलादी कहती है कि गढ़ टौंड़ के जाट सरदार को युद्ध में परास्त करना आसान नहीं है। कारसदेव कहता है—'मैं दाँतों से घोड़े की रास सँभालूंगा, और शत्रु-सेना को कुचल डालूंगा।' अपने प्रयत्न में सफल नहीं होने पर ऐलादी कारसदेव से कहती है—

हटक हटीले हट परे बरजे लये ना मान
बांगर की ररना रर रये बरजे न माने सौ-सौ बार

सौ-सौ बार मना करने पर भी हठीला कारसदेव हठ नहीं छोड़ता है। वह बार-बार 'बांगर' की रटना रट रहा है।

डा० सत्यकेतु विद्यालंकार ने 'बांगर' शब्द के ऐतिहासिक महत्त्व पर प्रकाश डाला है। उनका कथन है कि 'सतलज और यमुना के बीच का जल-विभाजक ऐतिहासिक दृष्टि से बहुत महत्त्वपूर्ण है। भारत के उत्तरी मैदान में यही एक ऐसा प्रदेश है, जो शस्य-श्यामल और उपजाऊ नहीं है। इस प्रदेश के उत्तरी भाग में कुरूक्षेत्र का बांगर है, और दक्षिण भाग में अरावली पर्वत-माला और राजपूताना का मरुस्थल। सिन्ध और गंगा के क्षेत्रों के बीच में कुरुक्षेत्र का बांगर ही एक ऐसा तंग रास्ता है, जिससे होकर पूर्व से पश्चिम की ओर जाने वाली या पश्चिम से पूर्व की ओर आने वाली सेनायें गुजर सकती हैं। यही कारण है कि कुरुक्षेत्र के बांगर प्रदेश में भारतीय इतिहास की अनेक महत्वपूर्ण और भाग्य निर्णायक लड़ाइयां लड़ी गई थीं।[1]

पहले कारसदेव का भाई सूरपाल गढ़ टौंड़ के जाट सरदार पर चढ़ाई करता है, और कारसदेव युद्ध के शेष भाग का शमन करता है। वह शत्रु-देश के निकटवर्त्ती वन में घासों से भरे और वृक्षों से घिरे निर्जन स्थान में जा पहुँचता है। सुगन्धित घास, रंग-विरंगे वृक्ष, लता-वितान और पक्षी एक-एक कर उसकी आँखों के सामने आते और जाते हैं।

इक वन चाले दो गये तिज वन पौंचे डांग
डांगन हरी करोनी सेंहुरी उलटी छाईं मकोर

१. भारत का प्राचीन इतिहास, पृष्ठ २१, सत्यकेतु विद्यालंकार, जनवरी १६५०, सरस्वती सदन, मसूरी।

जाँ गबीली झारी डाँग में देखीं गाड़र घास
छाईं कोरैयाँ झालरी डरैंया पै कुक रईं मोर
ढूढ़ें गलियाँ ना मिलें करिये कोन विचार
लोला बाँदीं पेंर सें पिंजरा लामी डार
खबरें ल्यानैं बैरी देस कों मोरा दये उड़ाय
सरग मरारे मोरा लै रये हेरैं चारऊं ओर

कारसदेव ने एक वन-खण्ड को पार किया, दूसरे को पार किया, और वह तीसरे वन-खण्ड के अंचल में जा पहुँचा। उसमें हरे करवन और थूहर के वृक्ष थे। उल्टी मकोर छाई थी। उस वन में उसने गाड़र घास देखी। वहाँ झालरदार कोरैया छाई थी। वृक्षों की शाखाओं पर मोर बोल रहे थे। उनके घोष से शान्ति भंग होती थी। वन इतना सघन था कि ढूँढने पर भी मार्ग सूझ नहीं पड़ता था। कारसदेव की समझ में नहीं आ रहा था कि वह क्या करे। उसने एक वृक्ष से घोड़े को बाँध कर उसकी लम्बी शाखा में पिंजड़े को लटका दिया, और शत्रु के देश का समाचार लाने के लिये मोर को आसमान में उड़ा दिया। मोर आसमान में चक्कर लगा रहा है, और चारों ओर देख रहा है।

कारसदेव जाट सरदार की भैंसियों को घेर कर उन्हें अपने अनुचरों को हरियल झाँझ ले जाने का आदेश देता है, और स्वयं लौट जाता है। कारस-देव की सहायता से शत्रु पर विजय प्राप्त कर मार्ग में आने वाली कठिनाइयों का निवारण करने के लिये अपने अनुचरों से घिरा सूरपाल भैंसियों के झुण्ड के साथ पर्वतों, नदियों एवं वनों को पार करता चला जा रहा है। मार्ग में हरियाना प्रदेश पड़ता था। वहाँ के जाट सरदार ने गढ़ टाँड़ के सरदार की कन्या का पाणिग्रहण किया था। अपने अनुचरों के विरोध करने पर भी सूरपाल ने अपने घोड़े की रास हरियाने की ओर मोड़ दी।

'बरजे सूरपाल ने ना लये मान बरजत फेर दये घोड़े की वाग
इक वन चाले दो गये तिज वन पौंचे कुँवला के पार
जाँ जल भरें बिटिया गढ़ टॉर की, पनहरिया सें सूरपाल रये बतराय
पानी पिवा दये प्यासे दूर कये, तब पनहरिया रईं बतराय
कोन देस सें आवन भयो, कोन देस खों जाय
अन्तरब्योरे सुना दओ आपनी भेद बता दो मोय
पूरब सें आवन भये चढ़ आये देस पछाँह
जनमन कैंये हरियल झाँझ में सूरा के अवतार

बातन-बातन में बत बढ़ गई बातन में बढ़ गई रार
रनिया के लक करियल पर जाय घोड़ेवारे सें रईं बताय
आगे कैये परिया भुवरी की, पाँछे मनकिया भैंस
करियल कौये मेरे बाबुल की जाँसे भेदे दियै बताय
कै जोरी भौंरा सो गये, कै बिरन गये समुरार
कै टाटैं टारैं आदी रात में, कै मारैं पसुरिया भुनसारी रात
ना जोरी भौंरा सो गये, ना बिरन गये समुरार
ना टाटैं टारैं आदी रात में ना मारैं पसुरिया भुनसारी रात
हाट चढ़ाई सौदा खरीदी तेरे माई-बाप सें
करियल लै-लै पूँछाझार, तब रनिया रईं बतराय
मेरे बाबुल बारा गाँव कों चौदों, तेरा कों सरदार
का बाबुल पै परीं अछीटी धार, करियल चढ़ा दई हाट
बारा में सूका पड़ी तेरा में गिरी अछीटी धार
ए असनय तेरे बाबुल पै पड़े, करियल चढ़ा दई हाट
झूंठे वचन घोरे वारे जिन बोलिये बायें कअन नई आय,
घरिएक खों थामिये घोड़े की बाग, कुसरे ल्याउं मंगाय'

सूरपाल ने वन के एक खण्ड को पार किया, दूसरे को पार किया और तीसरे वन-खण्ड को पार कर वह एक कुआँ के निकट जा पहुँचा। वहाँ हरियाने के जाट सरदार की वधू जल भर रही थी। सूरपाल ने उससे कहा—'मैं दूर देश का रहने वाला पथिक हूँ। मुझे जल पिला दो।'

जाटवधू—'कहाँ से तुम आ रहे हो? कहाँ जा रहे हो? मुझे अपने अन्तरब्योरे सुना दो, और अपना परिचय दो।'

सूरपाल—'मैं पूरब से पश्चिम देश में आया हूँ। मेरी जन्मभूमि हरियल झाँझ है, और मैं वीर का अवतार हूँ।'

बातों-बातों में बात बढ़ गई, और बातों में बात-की-बात में रार बढ़ गई। इतने में जाटवधू की दृष्टि भैंसियों की कतारों पर पड़ी। उसने अपने पिता की भैंसियों को देखते ही पहचान लिया। उसने सूरपाल से कहा—

जाटवधू—आगे की भुअरी भैंस की पाड़ी, पीछे की मनकिया भैंस और अन्य सभी भैंसियाँ मेरे पिता ही हैं। क्या मेरी नैहर में स्त्री-पुरुषों के जोड़े सो गये थे? क्या मेरे भाई ससुराल गये थे? क्या तुमने आधी रात में खोरों की टाटें हटा दीं? (कै टाटैं टारैं आदी रात में) अथवा तुमने भिनसारी रात में पसर चरते समय इन भैंसियों को घेर कर पकड़ लिया? (कै मारैं पसुरिया भुनसारी रात)

सूरपाल—'तुम्हारी नैहर में स्त्री-पुरुषों के जोड़े सो नहीं गये थे। तुम्हारे भाई रमुराल नहीं गये थे। आधी रात में मैंने खोरों की टाटें भी नहीं हटायीं। और न मैंने भिनसारी रात में पसर चरते समय भैंसियों को हाँक कर घेर लिया। तुम्हारे माँ-बाप इन्हें हाट में बेचने लाये थे, और मैंने हाट में ही उनसे इन भैंसियों खरीद लिया।' (हाट चड़ाई सौदा खरीदी तेरे माई-बाप सें)

जाटवधू—'मेरे पिता बारह गाँवों के चौधरी और तेरह गाँवों के सरदार हैं (मेरे बाबुल बारा गाँव को चौदा तेरा कों सरदार) उन पर ऐसा कौन-सा संकट आ पड़ा कि उन्होंने अपनी भैंसियों को हाट में बेंच दिया।'

सूरपाल—'तेरे पिता के बारह गाँवों में सूखा पड़ गया है और तेरह गाँवों में अकाल। इस संकट में तेरे पिता ने अपनी भैंसियों को हाट में बेंच दिया।'

जाटवधू—'घोड़ेवाले, झूठ मत बोल। तेरी बात ऊटपटांग प्रतीत होती है। थोड़ी देर तू घोड़े की रास थाम। मैं अपने पिता के कुशल मंगा लूं।'

जाटवधू ने सूरपाल के इस विषम कृत्य की सूचना अपने पति को दी। जब उसके पति ने युद्ध का भार ढोने के समय दुर्बल बैल के समान बैठ जाना चाहा, तो जिस प्रकार राजरानी बिदुला ने अपने पुत्र संजय को फटकारते हुए उसको युद्ध के लिये उत्साहित किया था, उसी प्रकार जाटवधू ने अपने पति को धिक्कारा, और गूजर सूरपाल का डट कर सामना करने के लिये शौर्य की लहरें उठाने वाली वाणी में कहा—

'उठा घरेलना रनिया सिर धरैं
हातन में लईं लफारी लेज।
इक बन चालीं दो गईं
तिज बन पौंची दोआर।
उठा घरेलना जलधरन धरैं
घुल्लन सें टांगीं लफारी तेज।
बालम-बालम कर टेरीं लामी झोंक
बालम मेरो बिगरो मायकै।
और तेरी ससुरार
डीलन अकेलीं लैं जात पूंछाझार।
तेरो जीवन को धिक्कार
इतनी कौवी जटरा ने सुन लये।
जटरा जटरिन सें रये बतराय
मानस हों वैतो लरों देवन सों नईं पोसाय।

ओ औतारी कौये भोलानाथ खों
काये खों बांदो बालम चाँदनो।
काये खो बांदो चारउँ हतियार
अपनी पोसाग उतारिये मेरे लिये तैं पैर।
घोड़ा दै-दै अपने राग खों
और बांदन कों हतियार।
छेंकत बनिहें तो छेंकहों
नईं जइहों बई के सात।
गोबरा डारत रैओं भुअरी भैंस खों
तेरे कुल को लगा देहों दाग।

(नंगी कटारी के समान लपकती) हरियाने की जाटवधू ने घड़े को उठा कर सिर पर रख लिया, और प्रतिकार का उपाय सोचती हुई भारी लेज को हाथों में ले लिया। उसने वन का एक खण्ड पार किया, दूसरे को पार किया, और तीसरे वन-खण्ड को पार कर वह अपने महल के द्वार पर जा पहुँची। उसने घड़े को सिर से उतार कर जलघरे में रख दिया, और खूंटी में भारी लेज लटका दी। उसने ऊँची आवाज में अपने पति को सम्बोधित कर कहा—'मेरो नैहर बीरान हो गई। सूरपाल मेरे पिता की भैंसियों को हाँक कर हरियल झांझ ले जा रहा है। तेरे जीवन को धिक्कार है।' यह सुन कर जाट सरदार ने कहा—'यदि मनुष्य हो, तो युद्ध किया जाय। देवों पर विजय प्राप्त कर सकना सम्भव नहीं है। कारसदेव शंकर का अवतार है।'

जाटवधू ने कहा—'तूने अस्तबल में घोड़ों को क्यों बाँध रक्खा है? क्यों शस्त्रों से अपने को सज्जित कर लिया है? तू अपनी पोशाक उतार कर मेरी पोशाक पहन ले। अपने घोड़े और लड़ाई के हथियार मुझे दे दे। यदि हो सका, तो मैं आगे बढ़ कर उन्हें रोकूँगी (छेंकत बनिहें तो छेकहों), वरना मैं उनके साथ ही चली जाऊँगी। कहे देती हूँ कि मैं वहीं उनके साथ भैंसियों के गोबर पाथूँगी (गोबरा डारत रैओं भुअरी भैंस खों), और तेरे कुल के गौरव को कलंकित कर दूँगी। (तेरे कुल को लगा देहों दाग),

जाट सरदार की सेवा की तैयारी—
जटरा सुन ऐसे जर मरो मन लगी जखीरन आग
तु तु तु तुरई बजी ऊँची गुरज बजी कंडाल
गुरज गुरज पै घंटा बाजै रनसिंगा दै ललकार
रन के कंकन बांदे हात में रनसूर भये तैयार
राजा जुड़ आये बाओन देस के बकतरिया असी हजार

कोउ सजावै बछेरी पै चाँदनी, कोउ चढ़ बैठे खरारी पीठ
इक वन चाले दो गये, चलतन लागी बार
पथरा मुर ककरा भये, ककरन की हुई रेत
सूरज अलोपी हो रये।

वधू की भर्त्सना से हरियाने का जाट सरदार क्रोधाग्नि में इस प्रकार जल उठा, जिस प्रकार जंगल में आग लग जाय। फिर क्या था? रण की तुरही तू-तू-तू बज उठी। ऊँची गुरज पर रण-कंडाल बजने लगे। गुरज-गुरज पर घंटे और रणसिंगे बज उठे। हाथों में रण-कंकण बाँध कर रणशूर तैयार हो गये। बावन देश के राजा और अस्सी हजार बख्तरधारी योद्धा बात-की-बात में पहुँच गये। कोई बछेरी की पीठ पर पलैंचा कसने लगा, और कोई घोड़े की खाली (खारारी) पीठ पर ही आरूढ़ हो गया। जाट-सेना ने एक वन पार किया, दूसरे वन को पार किया। जाने में तनिक भी विलम्ब न हुआ (चलत न लागी बार)। जाट घुड़सवारों के चलने से बड़े-बड़े पत्थरों के छोटे-छोटे खण्ड हो गये, (पथर मुर ककरा भये), और कंकड़ों के छोटे-छोटे खण्ड रेत के रूप में परिणत हो गये। (ककरन की हुई रेत) आकाश में रेतकणों के छा जाने से सूर्य अस्त हो गया-सा जान पड़ने लगा। (सूरज अलोपी हो रये) इस प्रकार युद्ध के मंगलाचरण का नगाड़ा बज उठा।

अति प्राचीन काल में वर्तमान हरियाना प्रदेश की रोहतक, करनाल, गुड़गाँव आदि तहसीलों का विस्तृत भू-खण्ड सघन वन-वृक्षों से आच्छादित था। उसमें लोगों की घनी आबादी नहीं देखी जाती थी। प्रतीत होता है कि अहीरों, गूजरों और गड़रियों का एक संयुक्त मण्डल था। हरियण झाँझ के गूजरों के पक्ष में विन्ध्यप्रदेश के अहीर और गड़रिये थे। कारसदेव उनका नेतृत्व करता था। सम्भवतः इसीलिये गूजर, अहीर और गड़रिये तीनों कारसदेव की उपासना करते हैं। पूर्वी पंजाब और यमुना नदी के पश्चिम हरियाना के जिन्द, जरजर, हिसार आदि तहसीलों के कौरवीभाषी जाटों का भी अपना एक पृथक गिरोह रहा होगा। शायद दोनों एक दूसरे से बैर रखते थे, और निर्भय होकर लूटपाट में सम्मिलित होते थे। महाभारत संहिता के अनुसार उच्छृङ्खल जाटों और आभीर लुटेरों ने अर्जुन के साथ इन्द्रप्रस्थ जाते हुए द्वारकावासी स्त्री-पुरुषों पर मार्ग में आक्रमण कर उन्हें लूट लिया था।

जाटवधू

कारसदेव की कीर्त्तिगाथा में निबद्ध हरियाने की जाटवधू के चरित्र की उपेक्षा नहीं की जा सकती। निर्भीकता की बोलती प्रतिमा जाटवधू की तुलना महाभारत की राजरानी विदुला से की जा सकती है। गर्भावस्था में पतिदेवों से ठुकरायी जाने पर महर्षि वाल्मीकि की सीता और कालिदास की शकुन्तला जंगल के कोने में धाड़ें मार कर रोती हैं, और जाटवधू पति के विधि-निषेध के अंकुश को तोड़ कर शेरनी भाँति दहाड़ती है। रूस की क्रान्तिकारिणी माहिला ऐमा गोल्डमेन के समान उसमें अपनी गर्मी है। जहाँ कालिदास की शकुन्तला और निर्वासिता सीता के रोने से मोर नाचना भूल जाते हैं, फूल हँसना छोड़ देते हैं, हिरनों के मुख से घास के कौर छूट जाते हैं,[1] और जंगल का उल्लास निःश्वास में बदल जाता है, वहाँ जाटवधू की गर्जना से पत्थर धूल बन कर आकाश को ढक लेते हैं, और सेलों में बिजली कौंधने लगती है। पति का निषेधार्थक उत्तर सुन कर जाटवधू दीनता से सिर नहीं झुकाती है। वह रण-यज्ञ के हवन-कुण्ड में हवनीय घृत बनने को उतावली हो उठती है, और शूलों की तीखी नोक पर चलने की अभिलाषा प्रकट करती है। दृढ़ता, दूरदर्शिता, निर्भीकता, सम्भाषणपटुता इन सबके समन्वय ने जाटवधू के अन्तरंग सौन्दर्य को रमणीय, स्मरणीय, प्राणमय और आकर्षणमय बना दिया है।

कारसदेव

कारसदेव प्रधान पुरुष पात्र के रूप में सामने उपस्थित होता है। विन्ध्य-प्रदेश और उत्तर प्रदेश में कारसदेव को दैवी मान्यता प्राप्त है। अमानुषिक रूप में ही गूजर, अहीर और गड़रिये कारसदेव की उपासना करते हैं। विधिपूर्वक पूजन करने वाले भक्तों के सिर पर उनकी सवारी आती है, और प्रचलित जनश्रुति के अनुसार उनमें श्रद्धा रखने वाले लोगों को अभिलपित वस्तुओं की भी प्राप्ति होती है। जिस प्रकार विन्ध्यप्रदेश और उत्तर प्रदेश में कारसदेव और सूरपाल के त्रिभुजाकार चबूतरे यत्र-तत्र दृष्टिगोचर होते हैं, उसी प्रकार सम्राट हर्षवर्धन के शासन काल में यक्षों के चबूतरे गहन वनों में विद्यमान थे। बाणभट्ट की अमर कृति 'कादम्बरी' के उल्लेखों से ज्ञात होता है कि जिन वीर पुरुषों ने अकाल मृत्यु के कारण योनिविशेष में उत्पन्न होकर अमानुषिक रूप धारण किया था, उनके जीवन-काल के गुणों से प्रभावित जनसमुदाय उनके घात स्थानों पर चबूतरे बना कर और ध्वजायें गाड़ कर फल की कामना से उनकी पूजा करते थे। कारसदेव के चरित्र की अलौकिक घटनाओं का इतना अधिक विस्तार है कि उनका अन्त नहीं मिलता है।

—भदई (मुजफ्फरपुर, बिहार)

१. नृत्यं मयूराः कुसुमानि वृक्षाः दर्भानुपात्तान् विजहुर्हरिण्यः, तस्याः प्रपन्ने समदुःखभाव मत्यन्तमासी द्रुदितं वनेऽपि। रघुवंश, १४ वाँ सर्ग।

कोउ सजावै बछेरी पै चाँदनी, कोउ चढ़ बैठे खरारी पीठ
इक वन चाले दो गये, चलतन लागी बार
पथरा मुर ककरा भये, ककरन की हुईं रेत
सूरज अलोपी हो रये।

वधू की भर्त्सना से हरियाने का जाट सरदार क्रोधाग्नि में इस प्रकार जल उठा, जिस प्रकार जंगल में आग लग जाय। फिर क्या था? रण की तुरही तू-तू-तू बज उठी। ऊँची गुरज पर रण-कंडाल बजने लगे। गुरज-गुरज पर घंटे और रणसिंगे बज उठे। हाथों में रण-कंकण बाँध कर रणशूर तैयार हो गये। बावन देश के राजा और अस्सी हलार बख्तरधारी योद्धा बात-की-बात में पहुँच गये। कोई बछेरी की पीठ पर पलैचा कसने लगा, और कोई घोड़े की खाली (खरारी) पीठ पर ही आरूढ़ हो गया। जाट-सेना ने एक वन पार किया, दूसरे वन को पार किया। जाने में तनिक भी विलम्ब न हुआ (चलत न लागी बार)। जाट घुड़सवारों के चलने से बड़े-बड़े पत्थरों के छोटे-छोटे खण्ड हो गये, (पथर मुर ककरा भये), और कंकड़ों के छोटे-छोटे खण्ड रेत के रूप में परिणत हो गये। (ककरन की हुईं रेत) आकाश में रेतकणों के छा जाने से सूर्य अस्त हो गया-सा जान पड़ने लगा। (सूरज अलोपी हो रये) इस प्रकार युद्ध के मंगलाचरण का नगाड़ा बज उठा।

अति प्राचीन काल में वर्तमान हरियाना प्रदेश की रोहतक, करनाल, गुड़गाँव आदि तहसीलों का विस्तृत भू-खण्ड सघन वन-वृक्षों से आच्छादित था। उसमें लोगों की घनी आबादी नहीं देखी जाती थी। प्रतीत होता है कि अहीरों, गूजरों और गड़रियों का एक संयुक्त मण्डल था। हरियण झाँझ के गूजरों के पक्ष में विन्ध्यप्रदेश के अहीर और गड़रिये थे। कारसदेव उनका नेतृत्व करता था। सम्भवतः इसीलिये गूजर, अहीर और गड़रिये तीनों कारसदेव की उपासना करते हैं। पूर्वी पंजाब और यमुना नदी के पश्चिम हरियाना के जिन्द, जरजर, हिसार आदि तहसीलों के कौरवीभाषी जाटों का भी अपना एक पृथक गिरोह रहा होगा। शायद दोनों एक दूसरे से बैर रखते थे, और निर्भय होकर लूटपाट में सम्मिलित होते थे। महाभारत संहिता के अनुसार उच्छृङ्खल जाटों और आभीर लुटेरों ने अर्जुन के साथ इन्द्रप्रस्थ जाते हुए द्वारकावासी स्त्री-पुरुषों पर मार्ग में आक्रमण कर उन्हें लूट लिया था।

जाटवधू

कारसदेव की कीर्त्तिगाथा में निबद्ध हरियाने की जाटवधू के चरित्र की उपेक्षा नहीं की जा सकती। निर्भीकता की बोलती प्रतिमा जाटवधू की तुलना महाभारत की राजरानी विदुला से की जा सकती है। गर्भावस्था में पतिदेवों से ठुकरायी जाने पर महर्षि वाल्मीकि की सीता और कालिदास की शकुन्तला जंगल के कोने में धाड़ें मार कर रोती हैं, और जाटवधू पति के विधि-निषेध के अंकुश को तोड़ कर शेरनी भाँति दहाड़ती है। रूस की क्रान्तिकारिणी महिला ऐमा गोल्डमेन के समान उसमें अपनी गर्मी है। जहाँ कालिदास की शकुन्तला और निर्वासिता सीता के रोने से मोर नाचना भूल जाते हैं, फूल हँसना छोड़ देते हैं, हिरनों के मुख से घास के कौर छूट जाते हैं,[1] और जंगल का उल्लास निःश्वास में बदल जाता है, वहाँ जाटवधू की गर्जना से पत्थर धूल बन कर आकाश को ढक लेते हैं, और सैलों में बिजली कौंधने लगती है। पति का निषेधार्थक उत्तर सुन कर जाटवधू दीनता से सिर नहीं झुकाती है। वह रण-यज्ञ के हवन-कुण्ड में हवनीय घृत बनने को उतावली हो उठती है, और शूलों की तीखी नोक पर चलने की अभिलाषा प्रकट करती है। दृढ़ता, दूरदर्शिता, निर्भीकता, सम्भाषणपटुता इन सबके समन्वय ने जाटवधू के अन्तरंग सौन्दर्य को रमणीय, स्मरणीय, प्राणमय और आकर्षणमय बना दिया है।

कारसदेव

कारसदेव प्रधान पुरुष पात्र के रूप में सामने उपस्थित होता है। विन्ध्य-प्रदेश और उत्तर प्रदेश में कारसदेव को दैवी मान्यता प्राप्त है। अमानुषिक रूप में ही गूजर, अहीर और गड़रिये कारसदेव की उपासना करते हैं। विधिपूर्वक पूजन करने वाले भक्तों के सिर पर उनकी सवारी आती है, और प्रचलित जनश्रुति के अनुसार उनमें श्रद्धा रखने वाले लोगों को अभिलषित वस्तुओं की भी प्राप्ति होती है। जिस प्रकार विन्ध्यप्रदेश और उत्तर प्रदेश में कारसदेव और सूरपाल के त्रिभुजाकार चबूतरे यत्र-तत्र दृष्टिगोचर होते हैं, उसी प्रकार सम्राट् हर्षवर्धन के शासन काल में यक्षों के चबूतरे गहन वनों में विद्यमान थे। वाणभट्ट की अमर कृति 'कादम्बरी' के उल्लेखों से ज्ञात होता है कि जिन वीर पुरुषों ने अकाल मृत्यु के कारण योनिविशेष में उत्पन्न होकर अमानुषिक रूप धारण किया था, उनके जीवन-काल के गुणों से प्रभावित जनसमुदाय उनके घात स्थानों पर चबूतरे बना कर और ध्वजायें गाड़ कर फल की कामना से उनकी पूजा करते थे। कारसदेव के चरित्र की अलौकिक घटनाओं का इतना अधिक विस्तार है कि उनका अन्त नहीं मिलता है।

—भदई (मुजफ्फरपुर, बिहार)

---

१. नृत्यं मयूराः कुसुमानि वृक्षाः दर्भानुपात्तान् विजहुर्हरिण्यः, तस्याः प्रपन्ने समुदःखभाव मत्यन्तमासी द्रुदितं वनेऽपि। रघुवंश, १४ वां सर्ग।

भइयादूज पर विशेष लोककथा

सात बैनन कौ बीर

● प्रस्तुति—मालती घोष

सबई बैदन ने दोजें पूजीं, कक्को जू नें सबके हातन में चाँवर दये, सब जनें बैठ गईं और बे किसा कान लगीं।

ऐसें ऐसें, सात बैनन में बिना कोसो एक वीर हतो। ऊखां सातइ अलफें हतीं। जब बो बड़ो भओ, तो ऊकी सगाई भई और ब्याव सुदो, तो मताई नें कई कै बेटा, अब अपनी बैनन खाँ तौ लिवा ल्याव। सो वो पैलां अपनी बड़ी बैन कें गओ। अपने भइया के ब्याव की बात सुनकें बैन खाँ खूबई खुसी भई। दूसरे दिना जब भइया ने बैन सें चलबे खाँ कई, तौ बैन कान लगी कै भइया काल सबेरें हम तुमाये लाने कलेवा बना देवी, सो तुम घरै चले जइयो, काये कै तुम अबै सब बैनन खां लिवाउन जानें परहै। हम इतै कौ बंदोबस्त करकें आ जैबी। भइया ने हओ कर दई।

भुंसारें बैन नें उठ कें जल्दी-जल्दी जांते से पीसो औ चून माड़कें कलेवा बनाओ। कलेवा लैकें भइया चलो, इतै बैन नें कलेवा की बची एक लुचई कुत्ता खां डार दई। कुत्ता लुचई खातनई मर गओ। ऐसो देखकें बैन खां अपने भइया की सात अलफन की खबर आ गई और तुरतई ख्याल आओ, ऊने जाके देखो कै उल्टे जांते के पीसबे सें ऊमें सांप पिस गओ ईसें जौ ऐसो भओ। बैन घर सें चिल्यात भगी कै भइया कलेऊ न कर लइयो। गेंवड़े के ऐगरई उयै भइया मिल गओ। ऊने भइया के हाथ सें कलेवा छुड़ा कें धरती में गाड़ दओ और कान लगी कै इतै लौ आइ गये, अब चलो संगेइ चले चलइत। सो आंगें-आंगें चलन लगी।

आंगें-आंगें बैन औ पाछें-पाछें भइया गैलई गैल चले जात ते। तनकई दूर चले कै बीच गैल में मेंहदी के कांटे डरे हते। बैन ने तुरतईं अपनी ओली फैलाई औ बोली—जो मैंने अपनी जान में कभऊं कोऊ कौ बुरओ न बिचारो होय, तौ जे सब कांटे मोरी ओली में आ जांय। सो सबरे कांटे ओली में आ गये। बैन बोली—भइया जा तुमाई दूसरी अलफ आय टर गई। फिर बैन नें मन में सोची कै जौ हमाव बिना कोसो बीर आय, ई की दो अलकें तौ टर गईं, अब हमें कोसो चाइये सो ऊनें उतईं से अपने भइया खां गरयावो सुरू कर दओ और गरयात भई भइया के आंगे-आंगे चलन लगी।

चलत-चलत एक नदिया मिली। देखतइ देखत नदियां उफला आई। बैन नें अपनी ओली फैला कें फिर ऊसई कई कै मैंने कमऊं कोऊ को बुरओ न सोचो होय, तौ नदिया टिगरन सें हो जाय। कैतन भेल नईं भई कै नदिया एकदम उतर गई। दोउ जनें ऊ पार निकर गये। बैन बोली—भइया, जा तोरी तीसरी अलक निकर गई, अब पनवेसरे पाछें पाछें चलो आ। औ गरयात भइ आंगें-आगें चलन लगी।

ऐसई गरयात भई घरै पौंची। सबनें जानी कै बैन सिरिन आय हो गई सो कोउ नें कछू नईं कई। अब बरात जाबे को दिन आओ। बरात सजी, बैन बोली भइया सें पैला हमें सजाओ। सबनें कई मांय येई की मान लो। सो सबसें पैला सजकें बरात के आगें-आगें चलन लगी। बरात आधी दूर चली कै गैल में काँटेई काँटे डरेते। बराती बोले कै अब कैसें आगें चलिये। तौलों बैन नें आगें बढ़कें ओली फैलाई और कछू बुदबुदाई कै सबरे कांटे ऐसें समिट गये जैसें फूल होंय। फिर बैक आंगें-आंगें चलन लगी और पाछें पाछें बराती।

बरात बिटियावारे के दोरें पौंची। सब नैगचार भये, अब टीका की बेरा भई। बैन आंगे आई और कान लगी—टीका पछीत सें हूहै। सब जने कान लगे—कऊं ऐसो होत है। लुगाईं खुसखुसान लगीं कै बाई ऐसो तो कभऊं नई सुनो, जा तौ नई रीत होत। पै दूला बोलो—जैसो हमाई बैन कैहै, ऊसई मानने। सो सबई खां मानने परी। जैसंई पछीतें टीका होन लगो, सामू को दोरो भरभराकें गिर गओ। सब जने कान लगे कै दूला की बैन तो भौत जानत, आज तौ ऊनें सबकी जान बचा लई। जा ऊनें अपने भईया की पांचवीं अलफ बचाई।

अग आगें के सब नेग दस्तूर भये और भाँवरन की बेरा भई, तौ बैन बोली—भावरें कोठा के भीतर परहैं। सबनें खूब समझाओ कै भावरें हरीरे मड़वा के तरें परतीं पै ऊनें कोऊ की न मानी। सबने कई—माय सिरिन की ऐई बात मान लेव। भावरें कोठा के भीतर परन लगीं। तीसरी भांवर पूरीई नईं हो पाई कै बखरी में हरीरो मड़वा भरभराकें गिर परो। इतै बैन नें भइया की छटीं अलफ बचाई।

बरात बिदा होकें घरै आई। खुसी-खुसी सब नेगचार भये। अब पलका-चार को नेग होनें हतो, बैन बोली—भइया से पैलां हमाओ पलका चार हूहै। सब लुगाई निखरया-निखरया कें बोलीं—अब तौ जा सांचऊँ सिरिया गई। भइया

नें सुनी, तौ ऊ बोलो कै अबैलौ अपनो सिरिन बैन की मानी, तौ अब काये न मानबी। ऐसई भओ, बैन नंगी कटार धरकें पलका पै बैठकें पारो सौ देन लगी। आधी रात कै एक नागिन फनफनात भई पलका के ऐंगर लौ आई। बैन नें जैसई देखो, सो अपनी कटार सें ऊके टुकड़ा-टुकड़ा करकें टुकनियां सें ढांक दओ औ लकिया लैकें बखरी में गाऊन लगी और चिल्लाया-चिल्लाया कें कान लगी—अब होन देव भइया को पलकाचार। सबजनी उठ गयीं और उयै खिसयान लगीं कै काय रीतें रातकें सोउन दैहै कै नईं, अबै तौ तैं कातती कै मोरे संगै हुहै पलकाचार। अब भइयै बुलाउन लगी? तब बैन नें टुकनियां उगारकें कटीकटाई नागिन दिखाई औ सब हाल बताओ कै जौन मोय सब कोऊ सिरिन् बिहाऊ बनाऊतती, सो मैं सिरिन न हती, मैंने तौ आड़ें-आड़ें आकें अपने भइया की सातऊ अलफें बचाई। सुनकें सबकों भोंतई खुसी भई। भोरईं बैन नें भइया कौ टींका करो। भइया नें लहर पटोर दैकें बैन की बिदा करी। बैन खां बीर मिलै। भोजाई खां ऐवात मिलो।

सबनें अपने चांवर चढ़ाये और बोलीं जै मोरी पनवेसरी दोज महारानी जैसी इनकी राखी सो सबकी राखियो।

—संकट मोचन रोड,
छतरपुर

स्वयंदूतिका चरित्र

० महाराज विश्वनाथ सिंह जू देव 'विवेकशीला'
० सम्पादक—डा० नर्मदा प्रसाद गुप्त

श्री युगल किशोराय नमः ॥ प्रथम वन्दना ॥
॥ मंगल सोरठा ॥

[छतरपुर के कृष्णभक्त नरेश महाराज विश्वनाथ सिंह जू देव का जन्म १८६६ ई में। १४ माह की आयु में राजतिलक, पर राज्य की व्यवस्था प्रबंधकों द्वारा। १८८४ ई० में ओरछा नरेश महाराज प्रतापसिंह जू देव की सुपुत्री कमलकुंवरि जू से विवाह। महारानी ने 'जुगलप्रिया' उपनाम से कृष्णभक्तिपरक रचनाएं लिखीं। १८८७ ई० मैं राजव्यवस्था के पूरे अधिकार। १९३२ ई० में स्वर्गवासी होने तक राज्य की उन्नति में महत्वपूर्ण योगदान। हिन्दी साहित्य के प्रेमी और संरक्षक। अनेक साहित्यकारों को राज्य में संरक्षण, पं० श्याम बिहारी मिश्र, पं० शुकदेव बिहारी मिश्र और बाबू गुलाबराय जैसे विद्वान विभिन्न पदों पर रहे। अभी तक साहित्यरसिक और आश्रयदाता के रूप में विख्यात, किन्तु कवि के रूप में अज्ञात। यहां पहली बार उनकी काव्यकृति 'स्वयंदूतिका चरित्र' प्रकाशित। इस कृति में 'विवेकशीला' उपनाम से दोहों और पदों में कृष्ण के रसिक रूप का एक प्रसंग वर्णित किया गया है जिससे वे माधुर्योपासक कृष्णाभक्त सिद्ध होते हैं। कहा जाता है कि वे सखी सम्प्रदाय के उपासक थे, उनके राज्य में सखी उपासकों को सम्मान प्राप्त था। छतरपुर की उर्वरा धरती में अनेक रत्न अभी तक छिपे पड़े हैं, प्रस्तुत है उनकी खोज की पहली किशत। अगले अंक में प्रतीक्षा करें एक अज्ञात प्रेमाख्यान की दूसरी किशत।—संपादक]

बन्दौं पंकज पांय, सादर तिन नागरिन के।
दुरि दूतिन सों जाइ, मिलहिं प्रथम जो स्याम सों ॥१॥

नागरता लहि तिनहिं की, श्री गुरु-पद-रज ध्याइ।
स्वयं दूतिका चरित वर, बरनत बिशद बनाइ ॥२॥

(प्रथम बचनबिदग्धा और स्वयं दूतिका में भेद)

दोहा—दै काहू के बीच जो, करै, सैन संकेत।
बचन बिदग्धा तिहि कहत, जे हैं सुमति निकेत ॥३॥
रचै प्रीति अंतर रहित, सूचै सुथल बिहार।
स्वयं दूतिका ताहि को, सकल सुकबि निरधार ॥४॥

[पुनः क्रियाबिदग्धा और बोधक हाव में भेद]

दोहा—क्रिया बिदग्धक बोधक हु, में त्यों ही है भेद।
ताहू के निरनय सुने, रहै न हिय पुनि खेद ॥५॥
निज हित हेत सुचातुरी, क्रियाबिदग्धा काम।
सैन सूचनी है क्रिया, बोधक में मतिधाम ॥६॥

[अथ स्वयंदूतिका चरित्र प्रारम्भ]

दोहा—स्वयं दूतिका चरित जो, है अति गुप्त सुजान।
तेहि बिबेकसीला सखी, सखि सों करत बखान ॥७॥

[बिवेकशीला बचन अंतरंगिनी प्रति]

सखि इक दिन खोजत फिरत, धेनु धूमरी स्याम।
पूछी इक नव नागरिहि, ह्वै अधीन बस काम ॥८॥

[पद १७ कला प्रथम शेष चरन १६+१२=२८]

कितै री धेनु धूमरी मेरी।
लखी कहूँ तो बेगि बतावै, बलिहारी हों तेरी ॥१॥
घन बन हेरि हेरि हार्‌यो हों, बहु भाँतिन तें टेरी।
जानि परत बिवेक सीला सखि, दई दूरि कहुँ प्रेरी॥२॥

[नागरि बचन ठाकुर प्रति]

पद १६ क० प्र० शे० १६+११=२७

तकौ जू तरनि तनूजा तीर।
बातमाल तक कुंजकुटी तट, जहँ घन गहन गँभीर ॥१॥
धीर सीर जहँ सुरभि पवन, बह बोलत कलरव कीर।
चलि देखहु बिवेक सीला पिय, क्यों अति होत अधीर ॥१२॥

[पुनः लीला सूत्रधारिणी बचन अंतरंगिनी प्रति]

दोहा—यों कहि नागरि लै गई, निज निकुंज हरि काँहि।
सादर दिय आनन्द जो, लहे कबहूँ कहुँ नाहि ॥९॥

पुनि तहँ तैं आगे कियो, स्याम सुजान पयान।
आतप प्रबल प्रचंड लखि, कोमल मुख कुँभिलान ॥१०॥
दैवाधीन तहाँ मिली, पुनि इक नारि सयानि।
ता मुख चन्द चकोर ह्वै, पूछत अति मृदु बानि ॥११॥

[ठाकुर जी के बचन या नारि प्रति]

पद—कहि री कहूँ इत सीतल छाँह।
कहुँ सीरी अति मधुर कूप जल, या बीजन बन माँह ॥१॥
जहाँ पथिक रहि थाल नियारौं, होइ चैन तन काँह।
साँची बदि बिवेक सीला तू, तोहि साँहें निज नाँह ॥

[नारि बचन ठाकुर जी प्रति]

पद—पथिक इत चलौ करौ बिसराम।
अति सीतल अति मधुर कूप जल अतिहि सुखद आराम ॥१॥
झरना झरत समीर त्रिविधि बह खगख अति अभिराम।
अमराई बिबेकसीला की है यह अति सुखधाम ॥

[पुनः लीला सूत्रधारिणी बचन अंतरंगिनी प्रति]

दोहा—ताप दुपहरी को गयो, या नागरि के संग।
चले बहुरि हरिअंग छबि, छलकत अमित अनंग ॥१२॥
दूरहि तैं लखि गूजरी, अनुपम छबि अभिराम।
मौन होइ ठाढ़ी भई, जिहि मग आवत स्याम ॥१३॥

सोरठा—दिवस रह्यो इक जाम, पंथ मिल्यो नहिं पथिक कोउ।
नजरि परी यह बाम, तासों पूछत पंथ हरि ॥१४॥

पद पू०—रिठौरा अब है कितनी दूर।
हे सुन्दरि कामिनी नितम्बिनि तो पै बसत नूर ॥१॥
निसि बसबे की ठौर इतै कित अथवन चाहत सूर।
कहि बिबेकसीला सखि छल तजि, मो पैधन भरपूर ॥

[गूजरि बचन ठाकुर प्रति]

पद १५ प्र० क० शे० १६+१०=२६

बटोही या बट छाँह बसौ।
जोजन एक रिठौरा अबहीं आगे अबन धसौ ॥१॥
चोरनि तैं द्वै पथिक मरे हैं तुम उन कर न फँसौ।
हों प्रेषिता पाहरू मेरे नेकहु नहिं हदसौ ॥२॥

३

नागरता लहि तिनहिं की, श्री गुरु-पद-रज ध्याइ।
स्वयं दूतिका चरित बर, बरनत बिसद बनाइ ॥२॥
(प्रथम बचनविदग्धा और स्वयं दूतिका में भेद)

दोहा—दे काहू के बीच जो, करै,सैन संकेत।
बचन विदग्धा तिहि कहत, जे हैं सुमति निकेत ॥३॥
रचे प्रीति अंतर रहित, सूचै सुथल बिहार।
स्वयं दूतिका ताहि को, सकल सुकबि निरधार ॥४॥
[पुनः क्रियाबिदग्धा और बोधक हाव में भेद]

दोहा—क्रिया बिदग्धक बोधक हु, में त्यों ही है भेद।
ताहू के निरनय सुने, रहै न हिय पुनि खेद ॥५॥
निज हित हेत सुचातुरी, क्रियाबिदग्धा काम।
सैन सूचनी है क्रिया, बोधक में मतिधाम ॥६॥
[अथ स्वयंदूतिका चरित्र प्रारम्भ]

दोहा—स्वयं दूतिका चरित जो, है अति गुप्त सुजान।
तेहि विवेकसीला सखी, सखि सों करत बखान ॥७॥
[विवेकशीला बचन अंतरंगिनी प्रति]
सखि इक दिन खोजत फिरत, धेनु धूमरी स्याम।
पूछी इक नव नागरिहि, ह्वै अधीन बस काम ॥८॥
[पद १७ कला प्रथम शेष चरन १६+१२=२८]
कितै री धेनु धूमरी मेरी।
लखी कहूँ तौ बेगि बतावै, बलिहारी हों तेरी ॥१॥
घन बन हेरि हेरि हार्‌यो हों, बहु भांतिन तें टेरी।
जानि परत विवेक सीला सखि, दई दूरि कहुँ प्रेरी॥२॥
[नागरि बचन ठाकुर प्रति]
पद १६ क० प्र० शे० १६+११=२७
तकौ जू तरनि तनूजा तीर।
बातमाल तक कुंजकुटी तट, जहँ घन गहन गँभीर ॥१॥
धीर सीर जहँ सुरभि पवन, बह बोलत कलरव कीर।
चलि देखहु विवेक सीला पिय, क्यों अति होत अधीर ॥१२॥
[पुनः लीला सूत्रधारिणी बचन अंतरंगिनी प्रति]

दोहा—यों कहि नागरि लै गई, निज निकुंज हरि काहिं।
सादर दिय आनन्द जो, लहे कबहूँ कहुँ नाहिं ॥६॥

पुनि तहँ तें आगे कियो, स्याम सुजान पयान।
आतप प्रबल प्रचंड लखि, कोमल मुख कुँभिलान ॥१०॥
दैवाधीन तहाँ मिली, पुनि इक नारि सयानि।
ता मुख चन्द चकोर ह्वै, पूछत अति मृदु बानि ॥११॥
[ठाकुर जी के बचन या नारि प्रति]

पद—कहु री कहुँ इत सीतल छाँह।
कहुँ सीरो अति मधुर कूप जल, या बीजन बन माँह ॥१॥
जहाँ पथिक रहि थाल निवारौं, होइ चैन तन काँह।
साँची यदि विवेक सीला तू, तोहि साँहैं निज नाँह ॥
[नारि बचन ठाकुर जी प्रति]

पद—पथिक इत चलौ करौ बिसराम।
अति सीतल अति मधुर कूप जल अतिहि सुखद आराम ॥१॥
झरना झरत समीर त्रिविधि बह खगध अति अभिराम।
अमराई विवेकसीला की है यह अति सुखधाम ॥
[पुनः लीला सूत्रधारिणी बचन अंतरंगिनी प्रति]

दोहा—ताप दुपहरी को गयो, या नागरि के संग।
चले बहुरि हरिअंग छवि, छलकत अमित अनंग ॥१२॥
दूरहि तें लखि गूजरी, अनुपम छवि अभिराम।
मौन होइ ठाढ़ी भई, जिहि मग आवत स्याम ॥१३॥

सोरठा—दिवस रह्यो इक जाम, पंथ मिल्यो नहिं पथिक कोउ।
नजरि परी यह बाम, तासों पूछत पंथ हरि ॥१४॥

पद पू०—रिठौरा अब है कितनी दूर।
हे सुन्दरि कामिनी नितम्बिनि तो पै बस्सत नूर ॥१॥
निसि बसबे को ठौर इतै कित अथवन चाहत सूर।
कहि विवेकसीला सखि छल तजि, मो पैधन भरपूर ॥
[गूजरि बचन ठाकुर प्रति]
पद १५ प्र० क० शे० १६+१०=२६
बटोही या बट छाँह बसौ।
जोजन एक रिठौरा अबहीं आगे अबन धसौ ॥१॥
चोगनि तें द्वै पथिक मरे हैं तुम उन कर न फँसौ।
हौं प्रेपिता पाहरू मेरे नेकहु नहिं हृदसौ ॥२॥

३

कुसल छेम हों चहति पथिक की गुनि बरु तुमहुँ हँसौ।
यह विवेकसीला की है मत यामै समुझि खसौ॥

[पुनः सूत्रधारिणी वचन अंतरंगिनी प्रति]

दोहा—यों कहि सूचि बिहार थल, रची प्रीति परतीति।
रसिक सुजावन की रहति, जामैं निज अति प्रीति॥
स्वयं दूतिका मुख हितै बोली तिय अधराति।
जिहि सुनि मदन गोपाल की, छतिया नित सियराति॥१६॥

[श्री ठाकुर प्रति श्री चन्द्रावली जी के वचन]

पद—बटोही चोरन को डरहै।
जाग जाग अब भी निसीथ प्रिय सूझत नाकर है॥१॥
सास अलग गै ननद सासुरे पिय नाहिंम घर है।
तापर बिबिध समीर देत दुख जारत जलधर है॥२॥
नवल बैस नहि संग सखी तन बिथित कामसर है।
श्री विवेकसीला मति लहि को सावधान न रहै॥३॥

[पुनः श्री लीला सूत्रधारिणी बचन अंतरंगिनी प्रति]

दोहा—सुरति स्वयंदूतत्व यों, सूचित करि यह बाल।
दै आनन्द नँदलाल कों, लिय रसदान रसाल॥१७॥
प्रश्न सहित उत्तर यहाँ, साभिप्राय बखानि।
गूढोत्तर आभरन को, प्रगट्यौ कवि सुख मानि॥१८॥
गुप्त अहै अति प्रेम रस, जानत रसिक सुजान।
तहँ विवेकसीला सदा, बिहरति बिसद बिधान॥१९॥
याही प्रेमाभक्ति तैं, जोग छेम नृप केर।
बल्लभीय ब्रजचन्द को, कियो आपनो चेर॥२०॥

इति छत्रपुराधीश श्री विश्वनाथ सिंह देव अर्थात् विवेकसीला कृत रस रहस्य स्वयं दूतिका चरित्र। श्री सम्वत १९५४ आषाढ कृ० ७ वार सोम।

दो कवि-दीप

हँसि हेरन हरि की

● रानी सरोज गोरिहार

मनहर मोर पंख सिर साजत।
मनमथ मर्दहिं लजावत।
घुँघरारी कारी अलकावलि बाँध चित्त लै आवत।
अनियारे दृग दीठि बान सों भेदन बहुत सतावत।
वा बाँसुरि की तान कहाँ का बाजत जियो जरावत।
ऊपरि ते हँसि हेरन हरि की उर 'सरोज' तरपावत॥

●

सखिन संग भूलि रहे बनवारी।
कदम कुंज चंदन पटरी लै रेसम रसरी डारी।
मुख चंदा की चमक चहूँ दिसि उड़त अलक घुँघरारी।
जनु सावन घन घिरे समेटत पूनम की उजयारी।
मनहर मुख मुसकानि मधुर मधु बंसी अधरन धारी।
दृग 'सरोज' लखि थकित मोहना मनहुँ मोहनी डारी॥

—पत्थरवाली कोठी, एफ एवेन्यु, कमलानगर, आगरा

ऐसे नैना अजब अली के

● डॉ० हरनारायण सिंह

ऐसे नैना अजब अली के।
सोचन में पर गये स्यामहू लोचन लखत लली के।
सुख रोचन मोचन दुख के हैं कोचन हृदय कली के।
कर तरजनी दुनालू साजत घूँघट तुबक नली के।
लखत भुलात सिद्धि सिद्धन के तुम हौ कौन गली के॥

—अजयगढ़; जिला पन्ना; म० प्र०

दतिया की सांस्कृतिक निधि :—

महाराजा पारीछत की ब्रज यात्रा

● डी० आर० पेसवानी

राजा शत्रुजीत के वीरगति के बाद उनके पुत्र पारीछत सन् १८०१ ई० में दतिया राज्य की गद्दी पर आसीन हुए। राजा पारीछत सन् १७८० में पैदा हुए तथा सन् १८०१ से १८३९ ई० तक दतिया राज्य का शासन उन्हीं के हाथों में रहा।

जब नदियाँ बाढ़ पर थी और मूसलाधार वर्षा हो रही थी, राजा पारीछत और उनकी रानी को रात्रि में एक अलौकिक शक्ति दर्शन दे रही थी, और उन्हें ब्रज भूमि के स्पर्श के लिए प्रेरित कर रही थी। अलौकिक स्वप्न में श्री राधा कृष्ण ने पारीछत से कहा कि तुम ब्रज भूमि का स्पर्श करो, इससे तुम्हारे मन की कामना पूर्ण होगी और राज्य तथा वैभव में वृद्धि होगी।[१] तब राजा ने ब्रज गमन की इच्छा की। शाके सम्वन्ध १७४४ वर्षा ऋतु में भादों शुक्ल पक्ष त्रयोदशी शुक्रवार को ब्रज यात्रा आरम्भ की।[२] ब्रज भूमि में राजा चार मास इक्कीस दिन तक रहे।[३] वृंदावन से दलीपनगर तक वापिस आने में उन्हें ४६ दिन का समय लगा।[४] यह यात्रा न केवल एक धार्मिक यात्रा थी, वल्कि इसका सांस्कृतिक एवं सामाजिक स्वरूप अधिक महत्वपूर्ण था। इस सम्बंध में एक दुर्लभ हस्तलिखित ग्रंथ ब्रज भूमि प्रकाश दतिया राज्य के ग्रंथों में प्राप्त हुआ है। इसके रचयिता श्री नवलसिंह जी है, जो राजा पारीछत के शासनकाल में राज्याश्रित कवि थे तथा यात्रा के समय राजा के साथ थे। इस ग्रंथ का ऐतिहासिक एवं सांस्कृतिक महत्व है, क्योंकि कवि ने इसमें अपनी आँखों देखी बातों का ही वर्णन किया है। कवि का वर्णन प्रत्यक्ष तथ्यों का उद्घाटन करता है।

राजा पारीछत के साथ पूरा रनिवास, सभी बन्धु वर्ग, दिमान अमान सिंह (राजा के मुख्त्यार) राजा के मित्र, राजनीतिज्ञ, रत्न-विद्या-विद, देश-

(१) श्री नवलसिंह कृत ब्रज भूमि प्रकाश, पन्ना (२) वही, पन्ना, ७
(३) वही, पन्ना ११२, (४) वही, पन्ना ११२।

कालज्ञ आदि थे। इसमें बड़ौनी के कुंवर मदनसिंह, भोपालसिंह, दिमान, चित्रसिंह, जगतराज, दिमान, कुंवर योवन, जुगराजसिंह, गढ़ किस्न के जुवरावरसिंह, भैया जू अपर्वलसिंह, कुंवर गुमानसिंह, दुरबुन के दिमान जरावसिंह, कन्हरगढ़ दुर्ग के केहरीसिंह, पहाड़सिंह और त्रिलोकसिंह, पमार ठाकुरों में सिरनेतसिंह, दिमान जवाहरसिंह, पर्वतसिंह, इन्द्रजीतसिंह, भोपाल सिंह, जवाहरसिंह, भुजबल रायसिंह, सुमानसिंह, कुंवर पूरन मल और इन्द्र-जीतसिंह दिमान आदि राजा के साथ इस यात्रा में गये थे। इसी प्रकार अन्य जगहों के दिमान भी राजा के साथ इस यात्रा में सम्मलित थे। मुख्य रूप से धँधेरे वंश के जगतसिंह, भैया जू कुंवर ईसुरीसिंह और चित्रसिंह तथा राधापुर के चतुरसिंह, मुखरा के ठाकुर कुंवर दंगलसिंह परमार, राव दरयाव सिंह, कुंवर विक्रमजीत के दोनों सगे भाई, सबदलसिंह और रतनसिंह, लमकाना के कुंवर डाकन जू, डामरौन से देवी सिंह, सैंगवा के जवाहरसिंह परमार, फौजदार भीमसिंह राजपूत और अनेक ज्ञानवान ब्राह्मण, किलेदार तथा मुख्य बुंदेला, परमार और धँधेरे ठाकुर, पड़िहार, चामंडराय, सोपत सिंह, (कछवाये ठाकुर) दूल्हाजू चौहान इत्यादि। मुहम्द खाँ जो कि नरवर के सुल्तान थे तथा करहरा के दोस्त अली भी राजा के साथ थे। ब्रजभूमि प्रकाश के लेखक श्री नवलसिंह, राजगुरु, श्री सांवले गुसाईं, मर्दनसिंह शिव प्रसाद, व्रजलाल व्यास, प्यारे लाल कनोजिया, ज्योतिषी जमुनापारी ब्राह्मण वैद्य देवी-दास, हकीम सुघर लल्ला, राजकवि किशुनसिंह भाट कवि, ब्राह्मण जुझौतिया भौंड़ेले दालचन्द्र बड़े बड़े व्यापारी, गुनीजन, गायक, बार बधुएं (वैश्याएं) राज सेना, वैश्य मोदी आदि भी राजा के साथ व्रज-गमन में शामिल थे।

राजा पारीछत ने साके १७८४ में दक्षणायन सूर्य होने पर वर्षा ऋतु में भाद्र शुक्ल त्रयोदशी भृगुवार को इन्द्रगढ़ से चलकर अपने ही राज्य के अन्तर्गत कन्हरगढ़ में प्रवेश किया।[१] वहाँ पर राजा ने दल सहित विश्राम किया। महाराजा पारीछत ने यात्रा पर जाने के पूर्व दतिया (दलीप नगर) में बहादुर बखतसिंह और दिमान दलीपसिंह को, इन्द्रगढ़ में लखनीत तथा कन्हरगढ़ (से वहाँ) में विक्रमजीत को सुरक्षा के लिए रखा।[२]

यात्रा दल के सुरक्षा की भी पूर्ण व्यवस्था की गयी थी। दिन और रात की चौकीदारी बड़ी सजगता से चौकीदारों द्वारा की जाती थी। दिन की चौकीदारी के लिए रुआ के ठग नियुक्त किये गये थे।[३]

(१) नवलसिंह कृत ब्रज भूमि प्रकाश पन्ना १६ दोहा १०६
(२) वही, दोहा १२६, पन्ना २०
(६) वही, पन्ना २०।

राजा पारीछत के इस ब्रज-गमन के समय अनेक पुर प्रमुखों ने राजा का स्वागत किया। कन्हरगढ़ (सेहुड़ा) से आगे चलने पर गोपालपुर के प्रमुख लाल साहब ने राजा की अगवानी की। श्री लाल साहब ने अपने दल सहित राजा पारीछत का बड़ा सम्मान किया और बहुत प्रकार की भेंट प्रदान की। इसके अतिरिक्त रामपुरा के प्रमुख माधवसिंह तथा जगमनपुर के सेंगर कुल के प्रमुख ने राजा की अगवानी की तथा वेद विहित विधि से सत्कार किया। इस वेद विहित विधि से किये गये सत्कार से स्पष्ट होता है कि तात्कालिक समाज में वैदिक संस्कृति और वैदिक संस्कार प्रचलित थे। राजा पारीछत द्वारा इस यात्रा के समय पचनद में स्नान और पितरों को जलदान दिया गया। पितरों के जलदान के इस उल्लेख से भी तत्कालीन समाज में वैदिक संस्कृति की पुष्टि होती है।[1] पितरों को जलदान के बाद राजा पारीछत ने ब्राह्मणों को गाय इत्यादि दान से सम्मानित किया।[2] इस उल्लेख से दतिया नरेशों की दानशीलता का परिचय मिलता है। अजीतमल की सराय में विश्राम करने पर एक अंग्रेज आफीसर ने राजा पारीछत से मुलाकात की। राजा और अंग्रेज आफीसर ने परस्पर भेंट प्रस्तुत की।[3]

राजा के प्रत्येक स्थान पर पहुँचने की सूचना ददिया नगर में भेज दी जाती थी। इससे राजा की स्वदेश प्रेम की भावना तथा हरकारे की व्यवस्था की सुचारुता का परिज्ञान होता है। राजा के विराम स्थल क्रमशः जसुंत, सरसेगंज, मखूरावाद, पिरोजावाद, खदोंली रहे और अंत में वे अभिराम बलदेव के महाधाम (मथुरा) पहुँचे। राजा ने कुंज निलय में विश्राम किया।

ब्रज पहुँचने पर राजा पारीछत ने विविध मंदिरों में जाकर देव शक्तियों के दर्शन और पूजन किया। वे कुंड मंदिर संकर्षन के धाम में गये और बलराम और रेवती के दर्शन किए। राजा ने इस मंदिर में माखन मिश्री प्रसाद चढ़वाया और स्वर्ण मुद्रायें भेंट की।[4] गोकुल में बखभान किशोरी (राधा तथा कृष्ण) की मूर्ति की पूजा की।[5] इस प्रकार राजा ने ब्रज भूमि के अनेक मंदिरों में जा जाकरके देवी देवताओं के दर्शन किये तथा ब्राह्मणों को दान आदि से सम्मानित किया। तुलादान के स्थान पर ५० स्वर्ण मुद्राएँ पुरोहितों को दान दीं।[6]

१. श्री नवलसिंह कृत ब्रज भूमि प्रकाश, पन्ना २१
२. वही, पन्ना २१।
३. वही, पन्ना २२, २३।
४. वही, पन्ना २६, छंद १०।
५. वही, पन्ना ३०। ६. वही, पन्ना ३४।

शाके सम्वत १७४४ में हेमन्त ऋतु में अगहन मास के कृष्ण पक्ष के चतुर्थी के शुभ मुहूर्त में राजा पारीछत ने वृन्दावन धाम से दलीपनगर (दतिया) की ओर प्रस्थान किया। आगरा पहुँचकर वहाँ के वैभवपूर्ण बाजार का अवलोकन किया। उस समय आगरा में अंग्रेजों का शासन था।[1]

मार्ग में राजा ने मेघगिरी के मंदिर में दुर्गा देवी की पूजा की और कर्न के प्राचीन दुर्ग में कर्न देवी के दर्शन किये तथा ब्राह्मणों को स्वर्ण दान किया। वापसी में राजा के विराम-स्थल कटरा, कुठोंदा, रामपुरा, गोपालपुर इत्यादि रहे। यहाँ के पुर प्रमुख राजा पारीछत को अपने भवन में ले गये तथा अपने सभा सदन और दरबार में यथोचित सत्कार किया। इससे स्पष्ट होता है कि तत्कालीन राजाओं के परस्पर सौहार्दपूर्ण सम्बन्ध थे। तथा वे एक दूसरे के प्रति यथोचित सम्मान की भावना से युक्त थे।

सिद्ध पीठ कन्हरगढ़ (सेवढ़ा) तथा इन्दरगढ़ में विश्राम के बाद दलीपनगर (दतिया) को प्रस्थान किया। दतिया पहुँचने पर प्रजाजन प्रजावत्सल महाराजा पारीछत के दर्शन को उमड़ पड़ी। लाला गनेशीलाल ने आनंद विभोर होकर एक हजार मुद्रायें राजा पर न्योछावर करके लुटवायीं। महाराजा ने फूलबाग में बैठकर प्रजा को दर्शन दिये। राजा पारीछत की ब्रज यात्रा से तत्कालीन समाज की सभ्यता और संस्कृति के संकेत प्राप्त होते हैं तथा तत्कालिक नगर और गाँव की स्थिति का परिचय प्राप्त होता है।

समाज में शिक्षा का प्रसार था। देवज्ञ, पंडित राजकवि, राजनीतिज्ञ रत्न विद्याविद आदि को राज-प्रश्रय प्राप्त था। राजा पारीछत जब ब्रज भूमि को प्रस्थान करने को तत्पर हुए, तो देवज्ञ ने बड़ी सूक्ष्म दृष्टि से मुहूर्त शोधन करके शुभ तिथि, वार लगन, ग्रह आदि को बताया था।[2] इससे राजवंश की धार्मिक अस्थाओं का पता चलता है।

बाजारों और वणिकों का उल्लेख भी यह बताता है कि उस समय व्यापार समुन्नति पर था और पर्याप्त मात्रा में चीजें प्राप्त होती थीं। उस समय द्रव्य की सम्पन्नता बहुत अधिक थी जैसा कि कृतिकार ने उल्लेख किया है कि द्रव्य बहु भांतिन भराई छकरन में।[3] विनिमय में रुपयों और मोहरों तथा विभिन्न प्रकार के मूंगा मोतियों आदि का भी प्रचलन था।[4]

१. वही, पन्ना १०२।
२. नवलसिंह कृत ब्रज भूमि प्रकाश पन्ना ७,८।
३. वही, पन्ना १७, छन्द १०७।
४. वही, पन्ना ६८।

राजा की इस तीर्थ यात्रा में नरवर के सुल्तान मुहम्मद खाँ तथा करेरा के दोस्त अली का शामिल होना हिन्दू और मुसलमान दोनों वर्गों के पारस्परिक मेलजोल की भावना को स्पष्ट करता है। मुसलमान सरदारों व सुल्तानों का राजा के साथ ब्रज यात्रा पर जाना महाराजा पारीछात के शासन काल की महत्वपूर्ण बात थी। इससे राजनीतिक एकता तथा राजा की सुलह कुल की नीति पर प्रकाश पड़ता है।

राजा पारीछत के समय में विविध प्रकार के वस्त्रों, और अलंकारों का प्रचलन था। उस समय मुकुट कलंगी, माला, नगों से जटित आभूषण, गजरा, मुद्री, कुण्डल, वलय आदि देव मूर्तियों और राजाओं को पहनाये जाते थे। पोशाकों में सुन्दर जड़तारी के वस्त्र प्रमुख थे। राजाओं के समृद्ध वस्त्राभूषणों से यह स्पष्ट प्रतीत नहीं हो पाता है कि सम्पूर्ण समाज के लोग वस्त्राभूषणों से समृद्ध थे।

दलीप नगर (दतिया) की एक सुन्दर संस्कृति और सभ्यता की झलक ब्रज भूमि प्रकाश में स्थान-स्थान पर दृष्टिगोचर होती है। इससे लोगों के संस्कार, अनुशासन, पारस्परिक स्नेह, और सहयोग की भावना, अपने राजा और अपनी भूमि के प्रति प्रेम, तथा लोक और परलोक दोनों के प्रति अस्था-निष्ठा और कर्तव्य निभाने का परिचय मिलता है।

तीर्थ यात्रा में राजा पारीछत के साथ अनेकानेक प्रबुद्ध नागरिकों का सम्मिलित होना उनकी अलौकिक निष्ठा का प्रतीक है और राजा पारीछत के साथ अपनी जन्म भूमि में वापिस आकर सम्पूर्ण जन-मानस को हर्षित करना एवं राजा के आगमन पर नगर के समस्त लोगों द्वारा आनंद-मगन होकर उत्सव सम्पन्न करना, घर को वंदनवारों से सजाना और मंगल गीतों से समस्त नगर को गुंजारित करना यहाँ के लोगों की अपने जीवन को आनंद से बिताने, अपनी भूमि के प्रति प्रेम जताने और अपने राजा के प्रति विश्वास जताने का प्रतीक है।

शोध छात्र, इतिहास, एम० एल०बी० कालेज, ग्वालियर (म०प्र०)

कहानी

नीलू

● दिनेश चन्द्र दुबे

—नीलू कुछ पूछना हो, तो पूछ लेना बेटा। मैं खाना खा चुका हूँ। जब फुर्सत होती है, तब तुम नहीं पूछती। और···

अभी कुछ देर पहिले नीलू पढ़ने बैठी थी तो दिमाग में जाने क्या-क्या बातें घूमती रही थीं। फिर बड़ी मुश्किल से उसने मन लगा पाया था। तभी तो बड़े प्यार से उसने पुकारा था—पापा, ये लैसन समझ में नहीं आ रहा, कल टैस्ट है। जरा इधर आइये।

लेकिन पापा का रूखा सा जवाब सुनकर वह खुद रुआंसी हो गई थी—अरे पढ़ने बैठ गई क्या? अरे बाबा, पहिले बच्चों को खाना-वाना खिला दे, फिर पढ़ती रहना। कौन-सा पढ़कर बड़ा···

तेरह साल की हो गई है नीलू। उसे कभी-कभी बड़ा आश्चर्य होता है। भाभी तब तक मामा के घर से नहीं लौटी थी। पापा इतने बड़े हो गये हैं, लेकिन उसे आश्चर्य होता है तो इस बात पर कि पहिले जिस बात पर डाँट दिया, उसी बात पर अब खुद आग्रह कर रहे हैं। पागल हैं पापा क्या? या वही पागल है जो···

कभी-कभी नीलू कुछ भी नहीं समझ पाती। मम्मी उस दिन कह रही थी—नीलू बेटे, तेरे पापा आधे पागल हैं। देखना एक दिन हमें भी पागल करके मानेंगे। आधा तो कर ही दिया है। यदि यहाँ रही तो····

लेकिन उस दिन···उस दिन पापा भी यही बात तो कह रहे थे—नीलू, तेरी माँ पागल है। जुम्मेदारी से रहना बेटी। तुझे कोई भी समस्या आवे तो छिपाना मत। सब कुछ कह देगा, समझी। पर अपनी माँ से यह सब मत कहना कि···समझी········

उस दिन भी माँ हमेशा की तरह भाग कर मामा के घर चल गई थी। पापा कई दिन तक रोज हर बस की घरघराहट सुनकर दरवाजे की तरफ भागते थे, पर माँ का आना हमेशा अनिश्चित रहता रहा है। उस दिन भी वे

नहीं आई थी। पापा पहिले तब उदास हुये थे, फिर वे मजबूरन शायद बगल वाले क्वार्टर के अंकल के घर चले गये थे और तब तक बैठे, जब तक घर पर चपरासी आकर यह नहीं पूछने लगा था कि शाम को खाने में क्या-क्या बनना है। याद है, उसे नौकर को वह सब समझाने के बाद वे उसी प्रकार गुमसुम अपने कमरे में जाकर कुछ पढ़ने लगे थे। तब तक, जब तक कि वह खुद कोई पुस्तक ढूंढ़ती-ढूंढ़ती वहाँ नहीं पहुँच गई थी। और तभी पापा किस कदर···

पर अब इन पापा को क्या हो गया है, किस तरह प्यार से पूछ रहे हैं—नीलू कुछ पूछना हो तो······

और नीलू भौचक्की से जाने क्यों पापा की तरफ देखती रह गई है। मम्मी कहती है 'तेरा बाप पागल है।' बाप कहता है 'तेरी माँ पागल है'। तो···तो क्या दोनों सच कहते हैं···या···फिर वह खुद···

नीलू कुछ भी नहीं सोच पा रही है।

पिछले कुछ दिनों से उसे पापा की कुछ हरकतें बड़ी अजीब सी लगती है। पहिले पापा अक्सर जब भी वह घर में पड़ी-पड़ी किताबें पढ़ती रहती थी, तो उसके हाथ से किताब धीमे से छुड़ाकर अपने पीछे छुपा लेते थे। फिर उसके सिर पर हाथ फेरते हुये बड़े प्यार से कहते थे—कहीं जाती-आती क्यों नहीं बेटी? दिन भर नन्दन-चम्पक में डूबी रहकर तेरा दिमाग खराब नहीं होता? देख सामने वाले शर्मा साब की लड़की किस तरह भाग दौड़ कर रही है और एक तू है कि···जा बाहर जाकर खेल बेटा। मैं चाहता हूँ कि मेरी बेटी बड़ी होकर एक व्यक्तित्व बने, न कि एक खुद में गुम साधारण सी औरत······

पर पिछले कुछ महीनों में पापा को जाने क्या हो गया है। उस दिन वह अपने कमरे की खिड़की के सामने बैठी कोर्स की किताब पढ़ रही थी। खिड़की का पर्दा आधा सरका था। पापा तभी जाने कहाँ से प्रकट हो गये थे। हे भगवान, किस कदर नाराज हुये थे—इतनी बड़ी हो गई है, पर इस तरह दरवाजे की तरफ मुँह करके बैठती है। कोई क्या इमेज बनायेगा? इसी तरह तो बचपन से बिगड़ती हैं लड़कियाँ। और फिर...कौन सी किताब पढ़ रही है?

और झटके से उसके हाथ से किताब छीन कर उसके पन्ने पलटे थे उन्होंने लेकिन फिर इतिहास की पुस्तक पाकर उन्होंने और कुछ नहीं तो झटके से पूरा पर्दा खिड़की पर खिसका कर बड़बड़ाते हुये भीतर जाकर बिना कारण छोटी गुड़िया को डाँटना शुरू कर दिया था कि वह बहुत ऊधम मचाती है। किसी को पढ़ने-लिखने नहीं देती।

पर तभी माँ जाने कब भीतर निकल आई थी। गुड़िया को गोद में उठाकर उसे चुप कराती वे उसके कमरे में आ गई थीं, फिर भरे गले से उसे और गुड़िया को छाती से चिपटाकर उन्होंने कहा था—देख लिया अपने बाप का हाल बेटी! इसीलिये तो कहती हूँ मैं कि······जैसी खुद की आदतें है लड़की की सहेलियों तक को घूरने की, वैसा ही सबको समझते हैं। जिसके मन में पाप होता है, उसे सब जगह पाप ही पाप दिखाई देता है।

—अरे चुप······

—हाँ-हाँ तो क्या हो गया था, जो लड़की को इस तरह······तो क्या हो गया। लड़की को क्या खुद जैसा ही बनाना है? बना खूब, इसी तरह यह भी बरबाद करेगी किसी की जिन्दगी, जिस तरह तूने···भूल गई इसी उम्र में तो तेरे साथ···

—हाँ-हाँ मैंने तो इस उम्र में···और तुमने···तुमने तो अपनी हरकतें नहीं छोड़ीं शादी के बाद तक। दो-दो बच्चों के बाप बन जाने के बाद भी बुलवाया था मुझी से उस हरामजादी नाइन को। याद है कि भूल गया··· बड़ा चरित्रवान् बनता है कमीना कहीं का।

—अब मुँह बन्द करेगी अपना या उठाऊँ जूता···

और फिर क्रोध से काँपते पापा मम्मी के नजदीक आ गये थे। अपना रोना तो वह भूल ही गई थी। देखती रह गई थी तो केवल पापा और मम्मी को। क्रोध और बेइन्तहा नफरत से एक दूसरे को खा जाने वाली दृष्टि से।···और और फिर जब पापा क्रोध से काँपते कोट पहिनकर बाहर निकल गये थे, तो मम्मी ने किस तरह उसे गले लगा कर बिलखते हुये कहा था·—अब तू ही बोल नीलू। इस घर में रहने से नरक में रहना भला है न?···एक बात हमेशा के लिये गाँठ बाँध ले नीलू कभी भी ऐसी वैसी बात अपने आदमी को मत बताना। आदमी का मन बड़ा खराब होता है। बचपने की कोई घटना यदि आदमी को पता चल जाये, तो वह जिन्दगी भर उसका उलाहना देकर औरत को अपमानित करता रहता है।

उस रात मम्मी उसे सीने से चिपका कर उसके साथ ही सोयी थीं, पर पापा के गई रात अपने कमरे से जोर से बड़बड़ाने पर माँ के साथ उसकी भी नींद खुल गई थी। लेकिन वह आँखें बन्द किये ही लेटी रही थी भय से, उत्सुकता से, तभी पापा का स्वर उसे स्पष्ट सुनाई दिया था—अब बच्चे जब जाग जायेंगे, तभी उठोगी क्या? जानता तो हूँ हमेशा की आदत। फिर कहती है बच्चे मैं बिगाड़ता हूँ। घर है साला या जंगल है।

और तब माँ एकदम फन्ना कर उठी थी। बड़बड़ाती हुई दूसरे कमरे

में गई थी। वगल में लगे उस कमरे से फिर उनकी तीखी क्रोधित आवाज उसने स्पष्ट सुनी थी—ले। खा ले। खा ले। जी भर के। फिर नहीं रहेगा जंगल। सबेरा हो, तो फिर देने लगना गालियाँ···

फिर पापा और मम्मी के सम्मिलित के स्वर उभरे थे। स्पष्ट—हे प्रभु! औरत है ये याकि···सालों ने क्या बैल बांध दिया हैं सिर से। खुद तो साले ऐश कर रहे हैं और अपुन हैं कि···

—अरे कहा किसने था जो···हम तो कहते हैं क्यों आये थे झक मार-कर। अब रख तो खिया है ब्यालीस भर सोना। अब लगने लगी न बुरी जब चार बच्चे···

—ये···ये जरा धीरे बोल बाबा। ये शरीफों की कालोनी है, तेरा गाँव नहीं है जो····

—हाँ···हाँ मालूम है सब। पर इससे तो अच्छा होता कि किसी गाँव में ही जाती। ये तो न होता कि हजारों का माल हजम करके भी हाथ पर रखा मंजन तक छुड़ाकर कोई कहता 'मौं कुत्तन कैसे लखन जू कैसे ठेका रखायें···'

—अरे···अरे ये बाबा जाओ अपनी चारपाई पर। भर गया जी अपना तो। क्या फायदा···इस जिन्दगी से तो साली मौत अच्छी है। आदमी एक बार में तो मर जाता है। न कि···परिवेश से तो जानवर भी बदल जाते हैं। लेकिन यह····।

टुकड़े-टुकड़े उसकी माँ के साथ गुजरी उसके पिता की जिन्दगी के कई क्षण जाने क्यों नीलू के दिमाग में अक्सर स्कूल में, घर में, सहेलियों के साथ उनके घर पहुँचने में अक्सर कौंध-कौंध जाते हैं। जब किसी सहेली के घर वह उसके मम्मी पापा को अजीब शांत-सा चेहरा लिये बैठा आपस में बति-याते देखती है तो ढेर सारी बातों के बीच यकायक नीलू को जाने क्या हो जाता है। वह एकदम घुप चुप्पी में तब तक डूबी रह जाती है, जब तक सहेली उसे टोकती नहीं है—ये···ये नीलू क्या हुआ तुझे री। एकदम चुप क्यों हो गई?

हाँ खूब याद आया उसे। वीणा के मम्मी-पापा उसे शायद इसीलिये अच्छे लगते थे। कभी-कभी तो उसका मन वीणा के घर से लौटने तक का नहीं होता था। पर रात हो जाने पर आखिर उसे लौटना ही पड़ता था।

पर कमाल यह था कि कभी-कभी तो मम्मी-पापा उसके इस तरह देर से लौटने पर डाँटने के बदले उसकी पीठ ठोकते और कहते थे—शाबाश! अच्छा किया बेटी। खूब पढ़ो और खूब घूमो फिरो। मस्त रहो। यही तो उम्र है घूमने-फिरने की।

लेकिन····लेकिन नीलू की समझ से परे हमेशा जो बात रहती रही है, वह यह है कि इसी बात पर कभी-कभी यही मम्मी पापा किस तरह उसे डाँटते थे—कहाँ रही इतनी देर। वीणा का नाम लेकर कहीं किसी के साथ तो नहीं फिर रही थी, बोल?

दोनों जिस दिन दिन भर एक दूसरे के पीछे-पीछे लगे रहते, तो सब ठीक चलता था। लेकिन किसी-किसी दिन मम्मी-पापा सुबह से ही एक दूसरे से सीधे बात न कर उसके जरिये बोलते थे, तो उसकी शामत आ जाती थी।

पर···पर पापा तुम्हारे एक दूसरे से बोलने या न बोलने से तुम्हारे मुझसे इस तरह व्योहार करने का क्या मतलब होता है पापा?

लेकिन यह सब तो तब भी गनीमत है। नीलू अक्सर सोचती है कि शायद वह छोटी हो और कुछ चीजें न भी समझ पाती हो।

पर यह बात उसकी समझ में कभी नहीं आयी कि कभी-कभी जिस बात पर पापा डाँटते हैं, मम्मी उसकी पूरी पक्षधारी करती है और मम्मी डाँटती है, तो पापा। इसका कारण क्या यह होता है कि इन दोनों में जब लड़ाई हो, तो नीलू उनमें से किसी एक का समर्थन करे?

पिछले कुछ दिनों से नीलू को अपने घर में एक बात और अजीब लगने लगी है। कभी-कभी वह देखती है कि पापा मम्मी को या मम्मी पापा को कोई बात बड़ी गहराई से समझा रहे होते हैं। यह क्रम इतनी देर तक चलता रहता है कि घर में न केवल मम्मी-पापा बल्कि वह उसके छोटे भाई-बहिन सभी बिना नहाये धोये खाना खायें घूमते फिरते रहते हैं। न कोई स्कूल जाता है, न कोई उन्हें कहता है।

पर सबसे अधिक आश्चर्य उसे तब होता है कि ऐसे कई-कई दिनों के बाद भी घर में सब कुछ ठीक-ठाक चला है तो मात्र एक या दो दिन के लिये। उसके बाद सब कुछ फिर वैसा ही हो गया है, जैसा हमेशा रहता रहा है। और तब...तब जाने क्यों उसे लगता रहा है कि वह कहीं ऐसी जगह भाग जहाँ न तो पापा हों और न मम्मी। होना हो तो कोई ऐसा हो जो...शेखर शायद उसे इसीलिए अच्छा लगता है। स्कूल में यद्यपि वह उससे बड़ी कक्षा में पढ़ता है। उम्र में भी कई साल बड़ा है वह, लेकिन फिर भी उसका मन जाने क्यों करता है कि भले ही वह उसके साथ वह सब छेड़खानी करता रहे जो उसे बिलकुल अच्छी नहीं लगती। लेकिन.... उस दिन वह कह रहा

था··· धत्··· लेकिन उसका मन जरूर करता है कि वह उसके साथ कहीं चली जाये दूर, बहुत दूर जहाँ वह हो और शेखर हो। बस, और कोई भी न हो। और कोई भी...।

लेकिन...लेकिन एक बात जो आज तक नीलू की बिलकुल भी समझ में नहीं आई, वह यदि सच पूछा जाये तो उसे यह लगता है कि यदि मम्मी मामा के घर खुश रहती हैं, तो फिर लौट कर आती क्यों हैं ? उधर पापा जब उन्हें इतनी नफरत करते हैं, तो उनके जाने के बाद उसी शाम से हर बस पर आँखें लगाये मम्मी का इन्तजार क्यों करते हैं ?...और लौटकर मम्मी पापा को और पापा मम्मी को अलग-अलग रहे दोनों का एक-एक पल का स्पष्टीकरण क्यों देते हैं ? दोनों कहीं भी बाहर जायें, लौटकर आयेंगे तो हम सबसे ज्यादा एक दूसरे के लिए क्यों चीजें खरीदकर लाते हैं ?

और जब यदि एक दूसरे को प्यार करते हैं, तो साथ-साथ रहते एक दूसरे की पसंद की हर चीज में व्यवधान क्यों डालते हैं ? मम्मी ने उस दिन कथा कराई थी, पापा लड़ पड़े थे—ये पैसे यदि किसी गरीब को दान कर दो तो...। और पापा उस दिन मिक्सर खरीदकर लाये थे, तो मम्मी ने किस तरह तूफान मचाया था—गुडिया के जन्म दिन पर यदि मुहल्ले भर को बुलाकर न्योते में चार पंडित बुला लेते तो क्या तुम्हारा कुछ बिगड़ जाता। ले आये ये लोहा...मेरे क्या हाथ टूटे हैं जो...नहीं, खेती नहीं बिकेगी। तुम दूसरा धन्धा करना चाहते हो ज्यादा लाभ का तो खुद करो न, पैसे क्यों दूँ ?

नीलू बेटी, तेरे पापा कब से तेरा इन्तजार कर रहे हैं। पूछना है कुछ या सोयें।—वे बोले—दिन भर के थके हारे आते हैं और तुम लोग...।

नीलू यकायक चौंक गई है। वह क्या जवाब दे, उसे समझ नहीं आ रहा है। वह किताब बन्द कर चुपचाप आँखें बन्द कर लेती है।

सो गई है शायद। खैर कल पढ़ा देंगे। तुम भी तो थकी आई हो। चलो सोया जाये।

भीतर की बत्ती बुझ गई है। आँखे बन्द किये नीलू अब भी तय नहीं कर पा रही है कि वह पागल हो गई है या...। उसकी परीक्षा अगले माह है। खैर...उसे सो जाना चाहिए। सुबह उठकर पूरा लैसन वह...।

व्यंग्य

अब मैं लिखूंगा

● जगदीश खरे

मैं लिखूंगा, खूब लिखूंगा। लिखने का मूड जमा है। तो लिखूंगा। आप चाहते हैं कि मैं न नामवर लेखक बनूं, न श्रेष्ट कवि। बस घास छीलता रहूँ। बहुत हो चुका, मैं लिखूंगा, मन चाहा लिखूंगा—जैसा चाहूँगा लिखूंगा चाहे आपको अच्छा लगे या बुरा। ज्ञान-पीठ पुरस्कार के एक लाख रुपये मुझे दावत दे रहे हैं और चिल्ला-चिल्ला कर कह रहे हैं कि गुरू, मैं था तो तुम्हारे लिये, परन्तु दूसरों के पास जा रहा हूँ। अब मैं ऐसा नहीं होने दूंगा।

पुरस्कार पाने के लिये कुछ सिरफिरे लोग थे, जिन्होंने नहीं लिखा। कहते थे कि साहित्य लिखेंगे, खूब लिखा साहित्य। मैं कहता हूँ कि उनके साहित्य को पढ़ा जाता है, या सच्ची कहानियाँ, कान्फीडेंशल एडवाइजर, प्राइवेट लाइफ। हद हो गई उनके दिमागी दिवालियेपन की। न घर के रहे न घाट के। जन्मभर पेट की आग से जलते रहे और उनका साहित्य पुस्तकालयों की आलमारियों में वंद। वह तो हमारे यहाँ का इंतजाम ही इतना माकूल है कि दीमक महरानी अपना साहित्य के प्रति प्रेम दर्शाकर उसे चट कर जाती हैं, नहीं तो पब्लीशर की नानी मर जावे।

क्या फायदा रहा ऐसे साहित्य का। मैं जैसा समाज चाहेगा, वैसा लिखूंगा। वह जैसा प.ना चाहेगा, लिखूंगा। मुझे समाज के लिये लिखना है न कि अपने लिये। मैं अभिनंदन-ग्रंथ लिखूंगा। जब चार छै अभिनंदन ग्रंथ मैं लिख डालूंगा, तो मुझे ऐसा विश्वास है कि कोई न कोई मेरा भी अभिनंदन कर ही डालेगा।

मेरे अंदर लिखने की कूवत है, और साहित्य में नकल को अपना माल कह कर गलाने के गुर भी मैं जानता हूँ। विद्यार्थी जीवन में ही नकल करने के जो शुभ संस्कार मुझमें डाले गये थे, वे आज भी मौजूद हैं और नकल को असल की तरह प्रस्तुत करने में सिद्धहस्त हूँ। भला बताइये, साहित्यकार वह भी ऊँचे साहित्यकार बनने के गुण मुझमें मौजूद हैं कि नहीं।

मैं आपको बार-बार इसलिये बतला रहा हूँ कि आप यह न सोचे कि मैं बिना नोटिस दिये ही रस-क्षेत्र में कूद पड़ा। मैं जानता हूँ कि अब इस क्षेत्र में भी भगदड़ मचने वाली है। मेरे सामने कोई साहित्यकार टिक नहीं सकेगा जैसे अमिताभ के सामने फिल्म कलाकार। सब के चेहरे लटक गये से लगते है, भयभीत हैं। उनके पेट भूखे रह जावेंगे। सब पत्र पत्रिकायें मुझे ही छापेंगी, सब समाज मुझे ही पढ़ेगा। सिर्फ मुझे ही—दीगर साहित्यकार फ्लॉप होगा, साहित्य के क्षेत्र में पिट जावेगा, मेरा लिटरेचर सुपरहिट होगा।

साहित्यकार बंधुओ, सावधान। अब मैंने लेखन का भी जिम्मा ले लिया है। अभी तक राजनीति में रहकर देश की भलाई करता रहा, परन्तु जितनी कर सकता था, नहीं कर पाया—इसका मलाल है। अब साहित्य का छोर मैंने संभाला है—जिस तरह राजनीति में आपने मेरी हर बात बिना किसी टीका टिप्पणी के स्वीकार की और अपनी राजनैतिक चेतना का परिचय दिया, तथा हर बार प्रचंड बहुमत से जिताया व सेवा का अवसर दिया। आपने देख ही लिया है कि हमने शेर व बकरी को एक ही घाट पर पानी पिलाया है। देश की जितनी तरक्की हम करना चाहते थे, नहीं कर पाये। फिर भी हमने जनप्रतिनिधियों की स्थिति में अप्रत्याशित विकास किया है। ज्यामित शास्त्र का सिद्धांत है कि यदि अ कोण ब कोण के बराबर है व ब कोण स कोण के बराबर है, तो अ कोण भी स कोण के बराबर होगा। इस सिद्धांत के अनुसार राष्ट्र की हालत सुधरी है। जन प्रतिनिधि समाज का अँग है, समाज राष्ट्र का अंग है, जन प्रतिनिधि की उन्नति-मायने समाज की उन्नति समूचे राष्ट्र की उन्नति।

इन जन प्रतिनिधियों में भी कुछ ऐसे हैं जो हठधर्मी के कारण विकास नहीं कर पा रहे है, इसके लिये आप शासन को दोषी नहीं ठहरा सकते। शासन ने तो सबको विकास करने की समान छूट दे रखी है—समान सुविधायें दी है, इस पर भी यदि कोई विकास न कर पाये तो यह जन प्रतिनिधि की स्वयं की कमजोरी है, शासन की गलती नहीं।

भाइयो, मैंने कभी किसी के काम में अड़ंगा नहीं लगाया और न अड़ंगा लगाया जाना बरदाश्त करता हूँ। आप मेरे स्वभाव से भली-भांति परिचित होंगे ही। यदि आपने किसी प्रकार की आलोचना या टीका-टिप्पणी मेरे लेखन पर की, तो याद रखिये सभी अखबार, पत्र-पत्रिकाओं को छापने से बंद कर दिया जावेगा। यह कोई धमकी नहीं है, यथार्थ है, फिर भी आपसे सहयोग चाहूँगा।

एडवोकेट, कोतवाली के पास, छतरपुर,

दो गीत/राजकुमार 'सुमित्र'

व्यक्त करो मन

धुंध, धुआँ, कोलाहल या कि हो विजन
जो कुछ भी संचित हो
व्यक्त करो मन।
व्यक्त करो मन।
पानी है एक शब्द
एक शब्द आग है
अंतर की आकुलता गीत का सुहाग है।
वंश चले गीतों का वह करो जतन।
व्यक्त करो मन।
समय, वृक्ष चंदन का
उम्र कालिदास है।
दुनिया है चन्द्रमुखी, एक देवदास है।
देह-गेह, दर्द-दाह सब करो वहन।
व्यक्त करो मन।

एक ग़लतफ़हमी के कारण

एक ग़लतफहमी के कारण सब सम्बन्ध टूट जाते हैं।
एक ग़लतफहमी थी मुझको
अपने मन की मंजुलता की,
लेकिन थी मंजुलता जैसे
देह किसी कमज़ोर लता की।

भाव कि जब आहत होते हैं, सब सम्बन्ध टूट जाते हैं
जलदर्पण की बात और है, दर्पण सभी टूट जाते हैं
एक ग़लतफ़हमी के कारण सब सम्बन्ध टूट जाते हैं।

ग़लती पर ग़लती दुहराई
अपने मन को पुष्पक माना
किन्तु किसी के तितली-मन में
हुआ असंभव मोह जगाना।

मन पर हों लोहे के घन सब सम्बन्ध टूट जाते हैं
परमहंस का अंश अटूटा लेकिन हँस टूट जाते हैं
एक ग़लतफहमी के कारण सब सम्बन्ध टूट जाते हैं।

हो सकता है कोई कह दे—
"तू तो बना दूध का धोया।'
बंधु, दूध की लाज बचाने
मैं छिपकर रातों में रोया।

आँसू हों जब अपमानित हों सब सम्बन्ध टूट जाते हैं
यंत्रीकृत जड़ता जीती है लेकिन मनुज टूट जाते हैं।
एक ग़लतफहमी के कारण सब सम्बन्ध टूट जाते हैं।

—११२, सराफा, जबलपुर, म० प्र०

तुलसी-जयंती पर विशेष

तृप्ति के ओ स्वाति-बिन्दु !

● देवेन्द्र नाथ खरे

तुलसी
तुम तुला में तुम समान हो।
लसी तुम्हारी प्रतिभा
राम गुन-गायन में
रामायन रामचरित बनी
आचरण ने तुम्हें दास बनाया
हुई तुम्हारी जन्मभू धन्य
पूजास्थली हुई सुरम्य
चित्रकूट के गिरि-कानन
उत्स-प्रवाह-वृक्ष-वीरुध-वेली-तृन
विकसित नन्दन-वन
बुलाने लगे प्राणियों को
'चल चित चेत चित्रकूटहिं चल।'
गूँजा भव-भय त्रासित मन में
दैन्य आत्मबल बना
कुण्ठा संत्रास पीड़ा
मन का उहापोह घना
मिटा, स्थिरता आई
एकाग्रता मुखर हुई
संकेत संयोग बना
चेतना जड़ सम्प्रक्त हुई
काल इंद्र धनुषरूप धार पुलकित हुआ।
विधि विधान प्रस्तुत है

जीवन है नाट्य सेतु
भव-भय-विमोचन
प्रमुदित जनगण मन—
अधिनायक भारत भाग्य विधाता
राम विश्व मंगल सुख दाता
संयोग और संकेत
चेतना के प्रज्वलित स्फुलिंग
बिखेरने लगे आलोक
तमसो मा ज्योतिर्गमय''''।
वाल्मीकि की अभिलाषा
व्यास की चातक पिपासा
तृप्ति के ओ स्वाति-बिन्दु
तुलसी तुम गरिमा सिन्धु
संतरण भव बाधा मुक्त पोत
शक्ति के अदम्य स्रोत
तुम प्रणम्य
लेखनी तुम्हारी धन्य
मानस मानस विहारी हंस
जीव उत्कृष्ट दिव्य अवतंस
हुलसी हिय चम्पक हार परम सुहावन
बिना मुरझाये शोभित मन
विलसित अरविन्दानन
मुखरित रव केकीगण
दुःख दावानल विदार
प्रफुलित घनश्याम
जीवन मुखरित अभिराम
गूंजा सर्वत्र राम...राम...राम...।

—नवनक्षत्र प्रेस, कटरा, बांदा

राष्ट्र कवि जन्म शताब्दी : एक रूपरेखा

राष्ट्रकवि की उपाधि तो उनके साथ ही चली गयी —महादेवी

२२ अक्तूबर ८३ की वह शाम, जीवन की अविस्मरणीय शाम इसलिए बन गई है कि उस दिन हिन्दी साहित्य की आधुनिक मीरा, ज्ञानपीठ पुरस्कार से विभूषित श्रीमती महादेवी वर्मा के सुदर्शन व्यक्तित्व की शीतल छाया में बैठकर कुछ क्षण अंतरंग बातचीत करने का सुअवसर पा गया था। साथ में थे बंधुद्वय डा० नर्मदा प्रसाद गुप्त और डा० वीरेन्द्र 'निर्झर'। पूर्व निश्चित समय से आधा घंटा विलम्ब से पहुंचने पर भी वे जिस अपनत्व भाव से मिलीं, ऐसा लगा जैसे अपने ही घर में हम लोग अपनी माँ के सामने बैठे हों। यद्यपि वे कुछ अस्वस्थ थीं तो भी जिस आत्मीयता से वे हमसे विविध प्रश्नों पर बातें करती रहीं वह कभी न भुलाया जा सकेगा।

राष्ट्रकवि स्व० श्री मैथिलीशरण गुप्त के सन् १९८६ में प्रस्तावित जन्मशती समारोह की योजना की चर्चा हुई, तो अत्यन्त भावुक होकर दद्दा की याद करती हुई कहने लगीं, "उन्हें कभी न भूल सकूंगी। उनका घर तो मेरा मायका बन गया था। दद्दा कहा करते थे कि हमारी एक ही तो बहिन थी। जब वे चली गईं तो हमारे दुःख में स्वयं भगवान भी इतने दुखी हो गये कि उन्होंने हमें दूसरी बहिन महादेवी के रूप में भेज दीं। उनसा भाई और सहृदय संरक्षक खोकर हमें जो दुःख हुआ शब्दों में नहीं कहा जा सकता।"

ऐसा कहते-कहते उनका कंठ अवरुद्ध हो गया था और नेत्र अश्रुपूरित। फिर भी वे कहतीं जा रहीं थीं, "दद्दा ! सच्चे अर्थों में राष्ट्र कवि थे। उनके सम्पूर्ण साहित्य में भारत की समूची संस्कृति समा गई, जो राष्ट्रीयता का सच्चा प्रमाण-पत्र है। राष्ट्रकवि की उपाधि तो उनके साथ ही चली गयी। स्व० श्री दिनकर तथा भवानी प्रसाद मिश्र या अन्य किसी कवि के काव्य में यह राष्ट्रीय तत्व कहाँ, जो दद्दा के काव्य में था। जितने सम्मान, श्रद्धा और अभिनंदन के पात्र दद्दा थे, वह उन्हें अब तक मिल ही कहाँ पाया है ? सर्वश्री डा० नगेन्द्र, गंगा शरण सिंह सिनहा आदि लोग ऐसे हैं जो उनके लिए अब

राष्ट्रकवि का दुर्लभ चित्र



राष्ट्रकवि मैथलीशरण गुप्त के दतिया में हुए प्रथम विवाह का अनुपलब्ध चित्र, बायीं ओर मणिमाला (कंठी), गोफ, मुक्तमाल कुण्डल, चूरा और कंगन पहने वर तथा सिरकौ या सिरगौ, नथनी, तिदानौ,कंठी के साथ बीजासेन की पुतरिया, मणिमाला आदि पहने वधू। पगड़ी, बागौ, लहँगा, चुनरी, गँठजोरा की निराली छब के साथ।

—चित्र श्री महेशकुमार मिश्र 'मधुकर' दतिया के सौजन्य से

भी कुछ कर करा सकते हैं। उन्हें कराना ही चाहिए। मैं एक बार चिरगाँव गयी थी। वहाँ के हाल देख, सुनकर तो हृदय पीड़ा से भर उठा था। दद्दा के चबूतरे (समाधि) की दुर्दशा का क्या वर्णन करूँ? जगह-जगह घास उगी हुई थी। कोई वहाँ दीपक भी नहीं जलाता था। क्या-क्या कहूँ अब दद्दा के बारे में? उनसा निश्छल व्यक्ति तो कोई और देखा नहीं। उनसा भाई खोकर मेरे हृदय की ही नहीं सम्पूर्ण देश की शून्यता कभी न भर पायेगी।

● **जन्मशती पर राष्ट्र अंगड़ाई ले**

राष्ट्रकवि की याद में यदि राष्ट्र के तन-मन न जागें, तो कैसी जन्म-शताब्दी। समाज के सभी चेतन संस्थान ऐसे रचनात्मक संकल्प कार्यान्वित करें कि हर आदमी राष्ट्रीय चेतना को महसूस और एक नया बदलाव आये। सावन तीज, बीस सौ तैंतालीस के लगभग ढाई वर्ष बचे हैं, इस अंतराल में सभी जागरूक संस्थाओं—शासन, समाज, भाषायी संगठन आदि को अपनी योजनाएँ निश्चित करना जरूरी है। अच्छा तो यह हो कि कोई एक संस्था केन्द्रीय शक्ति के रूप में कार्य करती हुई राष्ट्र के कोने-कोने में इस तरह शंख फूके कि धरती का चप्पा-चप्पा विविध आयामी रचनात्मकता से भर जाये।

कुछ रेखाएँ आँखों के सामने उभर रही हैं—

- वर्ष के प्रारम्भ से ही राष्ट्रभाषा हिन्दी के प्रसार-प्रचार की देशव्यापी योजनाएँ
- अहिन्दी भाषी क्षेत्रों में कम से कम हिन्दी के विकास की एक योजना का सम्पादन
- राष्ट्र-संघ द्वारा हिन्दी को अंतर्राष्ट्रीय भाषा के रूप में मान्यता
- राष्ट्रकवि की स्मृति में विविध उद्देशीय ग्रन्थों का प्रकाशन
- राष्ट्रकवि जन्मशती की स्मृति-स्वरूपा योजनाएँ जैसे डाक टिकिट का प्रकाशन, मूर्ति-स्थापन, स्मारक संस्थाओं का गठन, शोधपीठों की स्थापना आदि
- विविध प्रकारीय उत्सवों, समारोहों, सम्मेलनों, गोष्ठियों आदि के आयोजन
- राष्ट्रकवि-ग्रंथावली का प्रकाशन
- राष्ट्रकवि-पुरस्कार के लिए देशव्यापी संयोजनाएँ
- शोधकार्यों के लिए राष्ट्रकवि छात्रवृत्तियाँ
- प्रति वर्ष सावन तीज को 'कवि-दिवस' मानये जाने की शासन द्वारा घोषणा

—वीरेन्द्र शर्मा 'कौशिक' छतरपुर

दीप भव्य भारती-भवन के

—रामनाथ गुप्त 'हरिदेव'

सरल स्वभाव वारे परम प्रभाव वारे,
काव्य के सुचाव वारे भावना भरन के।
धर्म कर्म वारे पूरि क्रान्ति वारे भूरि,
मैथिलीसरन मंजु मैथिली सरन के॥
कवि हरिदेव शुद्ध राष्ट्र अनुरक्ति वारे,
रामभक्ति वारे शुचि स्वाभिमान धन के।
महारथी हिन्दी के भारतीयता के थंभ,
दीप्तमान दीप भव्य भारती भवन के॥

हटवारा, छतरपुर (म० प्र०)

तीन क्षणिकाएं

• अनुराग 'असफल'

१—पवन से छेड़छाड़

रास्ता रोकने पर
पवन ने मारा थप्पड़
पत्तों से निकला स्वर—
'खड़-खड़ड़।'

२—पवन-डाकिया

पवन
डाकिया बन
अगणित सन्देश पहुँचाने
निकली तो सही
पर पत्तों के अभाव में
दर-दर भटकती रही।

३—पवन का बचपना

उसने अपना बचपना
अब तक न छोड़ा
किसी कमरे की खिड़कियाँ भड़भड़ायीं
किसी घर का द्वार खोला।

—इलाहाबाद बैंक, कुलपहाड़ (हमीरपुर), उ० प्र०

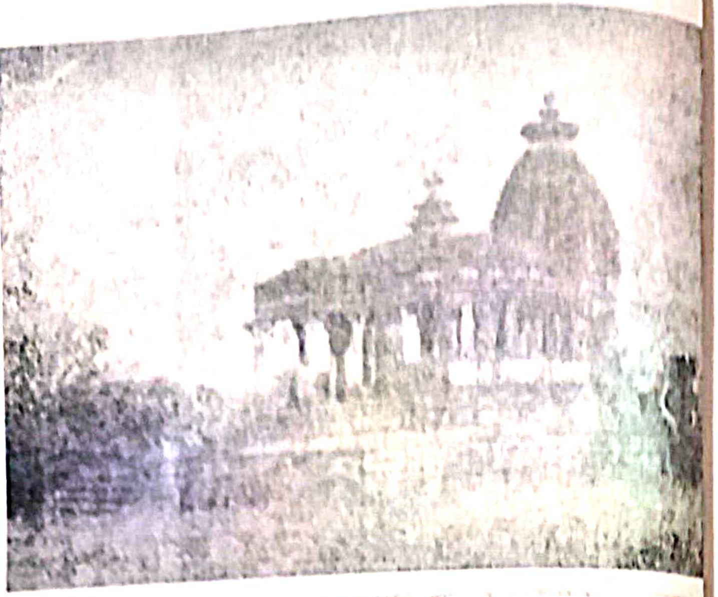
दमोह के सांस्कृतिक केन्द्र

• कृष्ण कुमार त्रिपाठी

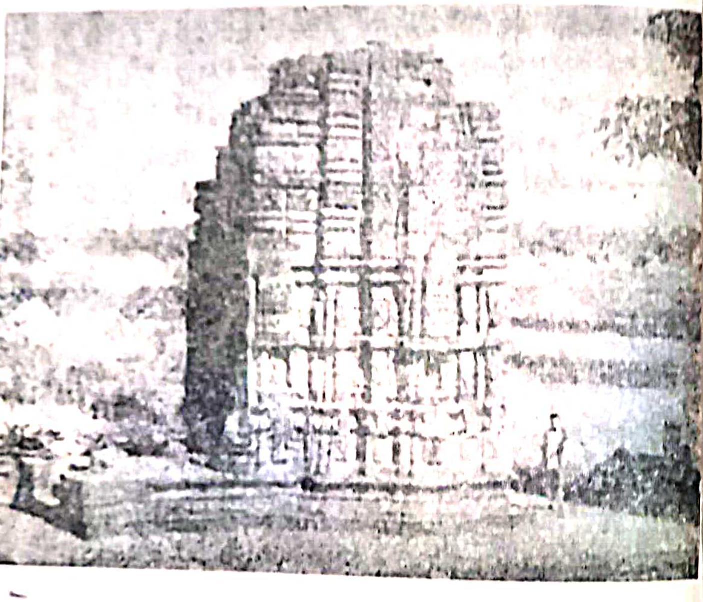
विन्ध्याचल की सुरम्य पहाड़ियों के मध्य आवृत दमोह जिला नैसर्गिक संरचना तथा प्राकृतिक सुषमा से परिवेष्ठित है। इस भू-भाग में सदियों पूर्व नदी-घाटी की सभ्यता से लेकर नगर-निवेश तक की मानव संस्कृति तथा शृंखलाबद्ध इतिहास का रोचक इतिवृत्त गौरवमय परिवेश में मुखरित हुआ है। इस भू-भाग के मध्य से प्रवाहित होनेवाली प्रमुख नदियों—सुनार, व्यारमा, कोपरा आदि के उभय तटवर्ती क्षेत्र सघन वनों से आच्छादित रहे हैं, जिनके तटीय क्षेत्रों में सुविधापूर्ण निवास करने वाले आदिमजनों ने सांस्कृतिक तत्वों की उद्भावना में प्रभूत योग दिया। प्रकृति-निर्मित शैलाश्रय (कंदरायें) सर्वथा निरापद एवं सुखप्रद मानव-जीवन के संरक्षण के लिए उपादेय थीं। नदियों में अनवरत प्रवाहित शीतल पेयजल, आखेटक वृत्त को प्रश्रय देने वाले पाषाण-उपकरण निर्माण के लिए सुलभ लघु तथा विविध आकार-प्रकार के प्रस्तर-खंड नदी तटवर्ती क्षेत्रों में सहज ही उपलब्ध थे। वनसंकुल क्षेत्र में मानव का आदिम जीवन मूलतः उसकी आखेटक वृत्त पर निर्भर था, तथापि उपलब्ध कंद-मूल, फल-फूल तथा वनस्पतियाँ भी उदर आपूर्ति के साधन थे। जंगली पशुओं का शिकार करना प्रमुख धंधा था। इन नदी-घाटियों के तटीय क्षेत्रों से कई आकार-प्रकार के पाषाणकालीन उपकरणों (हस्तकुठार, खुरचनी, बेधनी आदि) की उपलब्धि से उनकी उपकरण-निर्माणकला तथा आखेटक वृत्त पर रोचक प्रकाश पड़ता है। बटियागढ़ (जुड़ी नदी) आंजनी बेरखेड़ी तथा फतेहपुर के समीप पटार माला (स्थानीय मामा झिरना) नाम से अभिहित स्थलों से प्राप्त शिलाचित्रों से तत्कालीन दैनिक जीवन तथा मानव रुचि का पता चला है। इन अवशेषों के आधार पर मानव संस्कृति के आरंभिक स्वरूप की झाँकी सुलभ होती है।

दमोह जिला के अनेक कला-केन्द्रों तथा विस्तृत परिक्षेत्र के सर्वेक्षण से जो पुरावशेष प्रकाश में आए हैं, उनके आधार पर आरंभिक काल से लेकर परवर्ती राजवंशों की सामाजिक, सांस्कृतिक, धार्मिक तथा राजनीतिक स्थिति

दमोह के सांस्कृतिक केन्द्र



नोहलेश्वर (शिव) मंदिर, नोहटा समय, ई० दसवीं शती (कलचुरिकाल)



शिव-मंदिर (कोड़ल) समय, ई० ११वीं शती (कलचुरिकाल)

का पुनरावलोकन किया जा सकता है। शुंग, शक सातवाहन, गुप्त, गुर्जर प्रतीहार, चंदेल तथा कलचुरि आदि प्रमुख राजवंशों ने अपने शासनकाल में विभिन्न भू-भाग में सांस्कृतिक समन्वय का उद्घोष किया। कलचुरि शासक युवराज देव (प्रथम) के शासन काल में न केवल साम्राज्य का विस्तार हुआ, अपितु साहित्य, धर्म और कला का प्रचुर विकास हुआ।

ईसवी सन् १८०६ तथा १८१४ में सकौर से प्राप्त गुप्त शासकों के २० स्वर्ण सिक्कों की निधि की उपलब्धि विशेष रूप से उल्लेखनीय है, जिसमें समुद्र गुप्त, काचगुप्त, चंद्रगुप्त विक्रमादित्य तथा स्कंदगुप्त के महत्वपूर्ण स्वर्ण सिक्के सम्मिलित हैं। इसी प्रकार हिंडोरिया ग्राम से लगभग ३ कि० मी० उत्तर में स्थित खिरवा नामक स्थल से चांदी के ३१२ हिंद सासानी सिक्के प्राप्त हुए थे। अभिलेखीय साक्ष्य रूप में विजय सेन का जटाशंकर (किला) से प्राप्त अभिलेख (हटा) सिंगौरगढ़ स्तंभलेख, सिलरिया स्मृति स्तंभलेख, सलैया (बुर्द) सती स्तंभलेख, ईश्वरगढ़ (हिंडोरिया) अभिलेख, बम्हनी सती स्तंभ लेख, बटियागढ़ प्रस्तर अभिलेख, रोड़ का सती स्तंभलेख, चौपड़ा पट्टी, प्रस्तर अभिलेख, दमोह किले में फारसी लिपि में अंकित लेख तथा कतिपय अन्य अनेक उत्कीर्ण लेखों के वर्ण्य-विषयों के आधार पर परवर्ती शासकों तथा तत्कालीन राजनीतिक परिस्थितियों का निरूपण ऐतिहासिक घटनाओं के अनुक्रम में उपादेय है। इन शिलालेखों, स्मृति-स्तंभों में उत्कीर्ण तिथियों के आधार पर ई० १२ वीं शती के पश्चात् की क्षेत्रीय राजनीतिक स्थिति पर प्रभूत प्रकाश पड़ता है।

दमोह जिला के प्राचीन स्थलों यथा—सकौर, कुंडलपुर, एनेह, हिंडोरिया, मढ़ियादो, नोहटा, कोड़ल, फतेहपुर, बरी-कनोड़ा, हटा, बटियागढ़, मोहन्वा, मोहड़, गुबरा, रोंड, बनगांव, दौनी तथा कतिपय अन्य स्थलों में मंदिर-वास्तु तथा बहुसंख्यक कलाकृतियों की उपलब्धि से इस कथन की पुष्टि होती है कि इन कलाकेन्द्रों में ईस्वी पांचवीं-छठीं शती से लेकर ई० १३ वीं शती तक भव्य देवालयों, मठों तथा वैदिक देवी-देवताओं की पाषाण प्रतिमाओं का निर्माण बड़े परिमाण में कराया गया। सकौर का शिव-मन्दिर, शिवलिंग तथा कुंडलपुर का सपाट छत वाला मन्दिर गुप्तकालीन मन्दिर-वास्तु से साम्य रखते हैं। कलचुरियों के शासनकाल में शिल्प तथा मूर्तिकला का चरमोत्कर्ष एवं अप्रतिम समन्वय नोहटा तथा कोड़ल के शिखर शैली के शिव-मन्दिरों में दर्शनीय है। मोहड़, मोहन्ना तथा अन्य कलाकेन्द्रों में निर्मित शिव-मन्दिर काल प्रभावित ध्वंसावशेषों के रूप में परिवर्तित हो चुके हैं। बरी-कनोड़ा के समीप सघन जंगल के मध्य भूमिज शैली में निर्मित शिखरयुक्त शिव-मन्दिर चंदेल

कला-शैली का एकाकी उदाहरण है। विवेच्य क्षेत्र के विविध कला केन्द्रों में गणेश, शिवलिंग, शिव के विविध स्वरूप-नटराज, गजासुरसंहारक, उमा-महेश्वर, कल्याण सुन्दर, अंधकासुर का बध करते हुए आदि अनेक प्रतिमाएँ देखने को मिली हैं। विष्णु तथा उनके अवतारों (नृसिंह, वराह वामन) अंनत विष्णु, शेषशायी विष्णु, दशावतार वाली प्रतिमाएँ महत्त्वपूर्ण हैं।

त्रिवेदों सहित सिरदल, दिक्पाल, सूर्य, नवग्रह, द्वारपाल, मातृका, सरस्वती, पार्वती, गजलक्ष्मी, (कंकाली) चामुंडा, सुर-सुन्दरियाँ, प्रेमी-युगल, कुबेर, नाग-नागी, गंगा-यमुना परिचारिकाएँ माला लिए गंधर्व युगल, हनुमान, राजपुरुष, उपासक, योगी, योद्धा, युद्ध-दृश्य फलक, मानवीय तथा पशु आकृतियाँ, कामदेव, गज-शार्दूल तथा अन्य प्रतिमाएँ वैदिक धर्म के वर्चस्व का निरूपण करती हैं। अलंकृत शिलापट्टिकाओं तथा स्तंभों पर चैत्य-गवाक्ष आमलक, नक्काशीयुक्त अलंकरण, छुद्र घंटिकाएँ, लताबल्लरी पूर्ण विकसित कमल पुष्प तथा मन्दिर-वास्तु में प्रयुक्त प्रस्तर फलक बहुविध अंकनों से संयुक्त है। हरिहर तथा अर्धनारीश्वर आदि की समन्वित स्वरूप वाली प्रतिमाएँ भी मिली हैं। विवेच्य क्षेत्र के शिल्प-विधान में धार्मिक थता लोक-जीवन के साथ शृंगार , सौंदर्य, आमोद-प्रमोद, मिथुन दृश्य, पशु-पक्षी तथा प्राकृतिक चित्रणों का रोचक समन्वय दिखायी देता है। कतिपय कलात्मक प्रस्तर-खंडों में पौराणिक लीला-गाथाओं का मनोरम ढंग से रूपायित किया गया है। जैन तीर्थंकरों तथा यक्ष-यक्षिणियों की बहुसंख्यक प्रतिमाएँ उत्तर मध्यकाल में जैन-धर्म की लोकप्रियता तथा जैन मतावलम्बियों के वर्चस्व को निरूपित करती हैं। कुंडलपुर जैनतीर्थ के रूप में आज भी सुविख्यात् है।

दमोह के स्थानीय शासकीय संग्रहालय में देवी-देवताओं की पाषाण प्रतिमाओं के अतिरिक्त अलंकृत स्तंभ, कलात्मक मंदिर-द्वार, सिरदल तथा वास्तुखंड संग्रहीत हैं। यहाँ के संग्रह में कामदेव की स्थानक प्रतिमा देखने को मिली है, जो विशेष रूप से उल्लेखनीय है। कामदेव को अलंकृत स्तंभ व प्रकोष्ठ के मध्य स्थानक मुद्रा में दिखाया गया है। सुव्यवस्थित केश-विन्यास, आकर्षक मुख-मुद्रा, सुगठित शारीरिक सौष्ठव, सुरुचिपूर्ण अलंकरण, पारदर्शी अधोवस्त्र, यज्ञोपवीत आदि की समन्वित कलात्मक सज्जा कलावैशिट्य एवं लोक-रुचि का निदर्शन कराती है। सिर के पीछे अंडाकार प्रभामंडल है। बायें भाग में लटकता हुआ धनुष तथा उभय करों के मध्य वाण सुशोभित है। पुष्पित उपवन का आरेखन सौंदर्य तत्त्व की अभिवृद्धि में सहायक है। नीचे करबद्ध स्थान कातथा आसन!य मानवीय उपासक प्रदर्शित हैं। अलंकृत पार्श्व स्तम्भों के भाग में कीर्तिमुख तथा वाह्य भाग में गज-शार्दूल अलंकरण

है। कला वैशिष्ट्य के आधार पर इस प्रतिमा का निर्माण काल ईस्वी ८ वीं-९ वीं शती प्रतीत होता है। दमोह स्थित फुटेरा तालाब के समीप पशु-वराह तथा वीणापाणि सरस्वती की प्रतिमाएँ भी महत्वपूर्ण हैं। दमोह-संग्रहालय तथा जिलाध्यक्ष निवास प्रांगण में संरक्षिप्त अनेक कलाकृतियाँ कलचुरि कला-शैली का प्रतिनिधित्व करती है। ये सभी अवशेष ईसवी दसवीं शती से तेरहवीं शती के मध्य के हैं। दोनों से अवाप्त की गई कलाकृतियाँ, मन्दिर अवशेष संप्रति रानी दुर्गावती संग्रहालय जबलपुर में प्रदर्शित हैं।

नोहटा तथा कोड़ल के कलचुरीकालीन शिखरयुत्त देवालयों की वाह्य भित्तियों तथा आंतरिक शिल्प पट्टों में उत्कीर्ण देवी-देवताओं तथा सुर-सुन्दरियों का अंकन मनोरम है। गुबरा के विविध स्थानों में संग्रहीत अभि-लिखित आसनस्थ गणेश, नृत्य गणेश, वीणाधर तथा वीणावादक शिव, योगा-सन विष्णु, अंनत विष्णु, वेणुवादक शव युगल, दिकपाल तथा देवांगनाओं की आकर्षक प्रतिमाएँ हैं। दमोह से तेंदूखेड़ा-पाटन मार्ग पर तेजगढ़ के समीप हिनौती ग्राम से लगभग ८ किमो मीटर दूर मोहड़ में भग्न मन्दिरों अवशेष, शिलापट्टों पर उत्कीर्ण शिव-विवाह दृश्य, नृत्यरत शिवगण, गणेश, विष्णु, हयग्रीव, नागी, दीपधारिणी देवी तथा हिन्दू देवी-देवताओं की प्रतिमाएँ संग्रहीत है। ध्वस्त मन्दिर का सम्मुख भाग अवशिष्ट है।

दमोह-ज़बलपुर मार्ग पर नोहटा के समीप स्थित नोहलेश्वर मन्दिर, जिसे कलचुरि शासक (प्रथम) युवराज देव की रानी नोहला देवी ने ईसवी दसवी शती में बनवाया था। ये दोनों भगवान शिव के परम उपासक थे। मन्दिर वास्तु तथा कला के सांगोपांग अध्ययन से ज्ञात होता है कि विवेच्य मंदिर कलचुरिकालीन कला-शैली की अप्रतिम कृति है। यह मंदिर पंचरथ सहित शिखर शैली का है, जो ऊँची जगती पर स्थित है। मंदिर में सोपान, प्रवेश द्वार, अर्धमण्डप, मण्डप, महामंडप अंतराल, गर्भगृह का समावेश मिलता है। मंदिर के वाह्य सम्मुख भाग तथा आंतरिक प्रवेश द्वारों में गंगा-यमुना सहित अलंकरण तथा देवी देवताओं का अंकन है। द्वारशीर्ष के मध्य में विविध आयुधों सहित नटराज शिव प्रदर्शित हैं। लता-वल्लरी, पुष्प-पत्रांकन, मंगल-घट, कीर्तिमुख भारवाहक, नवग्रह, सप्तमातृकाएँ, त्रिदेव, सरस्वती, गंधर्व युगल आदि का सुरुचिपूर्ण अंकन। मंदिर की आंतरिक छतें सुविकसित कमल पुष्प तथा स्तम्भों पर लता-बल्लरी, छुद्र घंटिकएँ लटकती दिखायी गयी हैं। गर्भगृह के भीतर जलहरी के मध्य शिवलिंग स्थापित है। मंदिर के वाह्य तथा आंतरिक भाग में विविध देवी-देवताओं, व्रह्मा, विष्णु, गणेश, नटराजशिव,

सरस्वती, कंकाली, पार्वती तथा उमा-महेश्वर के अतिरिक्त आकर्षक भाव-भंगिमाओं सहित सुरसुन्दरियों, परिचारिकाओं आदि को आलंकारिक विधाओं सहित रूपायित किया गया है। मंदिर में प्रस्तुत कलात्मक प्रस्तर खंड, चैत्य गवाक्ष, आमलक तथा शिखर एवं लघु शिखरों का रोचक समन्वय है। मंदिर का बाह्य अलंकरण लौकिक पक्ष तथा आंतरिक भाग धार्मिक स्वरूप का महत्व प्रतिपादित करता प्रतीत होता है। विवच्य मंदिर के शिल्प-विधान में ललितकला से बहुविध स्वरूपों का समन्वय है, जिनमें वास्तुतत्व का सूक्ष्मतम अंकन तथा दूसरी ओर शृंगारिक भावना की सहज अभिव्यक्ति का उत्कृष्ट स्वरूप दिखायी देता है।

दमोह के समीप बांदकपुर सुविख्यात हिन्दू-तीर्थ है। मंदिर के अंदर स्वउद्भूत शिवलिंग दर्शनीय है। कुंडलपुर जैन तीर्थ स्थल के रूप में प्रख्यात है। इसे २४ वें तीर्थंकर महावीर स्वामी की पुण्यस्थली कहा जाता है। यहाँ उन्नत सुरम्य पहाड़ियों के मध्य आधुनिक जैन मंदिरों तथा सरोवरों का निर्माण कराया गया।

प्राचीन इतिहास, संस्कृति एवं पुरातत्व,
सागर विश्वविद्यालय।

परिवर्तन

● कुमार संजीव

शासन द्वारा व्यापक स्थानान्तरण···

नये छोटे साहब मेहनती, ईमानदार और नियमोपनियमों के पाबन्द भी। सुबह से शाम तक साइट पर। कभी-कभी दफ्तर। न अधिकारी से राम-राम न मक्खनबाजी।

ठेकेदार की जान सांसत में, मजदूरों की आफत···। हर काम देखता है, आराम नहीं करने देता। पूरा-पूरा काम कराता है। न लेता है, न लेने देता है।

ठेकेदारों में सलाह···मजदूर संघ की बैठक। एक सप्ताह तक शान्ति। इस बीच एक दिन ठेकेदार बड़े साहब के बंगले पर। जेब में एक मोटा लिफाफा···थोड़ी बातचीत और मुस्कराते हुए वापिस···जेब खाली।

एक सप्ताह बाद साहब का दौरा। छोटे साहब रोज की तरह काम में भिड़े हुए। बड़े साहब ने बुलाया···पसीने से लथपथ दौड़ते आये···पहली डांट—ये क्या हुलिया बना रखी है, समझ ही नहीं आता। अधिकारी हो या कुली? लेने क्यों नहीं आये? काम में भी दुनिया भर की मीन-मेख, झल्लाहट। छोटे साहब के बोलने की कोशिश अगली झिड़की के साथ बंद।

शोरगुल की आवाजों के साथ मजदूरों का जुलूस, हाय-हाय के नारे। बड़े साहब की एक और डांट। मजदूर नेताओं से बातचीत, चाय-नाश्ते के बाद जुलूस समाप्त···समझौते की घोषणा···।

चलते-चलते साहब ने स्निग्ध दृष्टिपात किया, छोटे साहब को साथ लिया। धीरे से बोले—इस क्षेत्र में···और···अच्छा मिलता है। कल ले आना, तभी तुम्हारे प्रकरण पर भी कार्यवाही करूंगा।

दूसरे दिन छोटे साहब सामान लेकर बंगले पर········· चपरासी ने सामान लिया और अन्दर। जब तक साहब बिल दें—कुत्ता गुर्राया। साहब पीछे हटे····कई सौ का बिल पैसे मिलें तो जांय। तभी बाई साहब मुस्कुराती हुई आई—आपका उपहार बहुत अच्छा है, धन्यवाद। बड़े साहब बोले—देखो भाई सम्हालकर चलाओ···मैं तो हूँ···चिन्ता मत करो। कुछ नहीं होगा। अब जाओ, मामले को खत्म समझो।

छोटे साहब चिन्ता मान बाहर आये। अगले दिन ठेकेदार आया, छोटे साहब से बड़े साहब का हाल पूछा, लिफाफा दिया—इस बार लिफाफा वापिस नहीं हुआ।

तब से ठेकेदार, साहब, मजदूर और नेता सभी प्रसन्न हैं। अप्रसन्न है तो केवल इस देश का भाग्य।

५७७, कोतवाली वार्ड, जबलपुर।

लघुकथा

गुरु दक्षिणा

● आदित्य 'ओम'

झाँसी मोटर स्टैण्ड पर मैं बस की प्रतीक्षा कर रहा था, और प्रतीक्षा करना कितना बोर काम है, यह बताने की बात नहीं, कि तभी एक परिचित आवाज सुनाई पड़ी—'सर, नमस्ते । आप यहाँ कैसे ?'

पीछे मुड़कर देखा, विधि प्रथम वर्ष का मेरा एक विद्यार्थी था । उत्तर दिया—'गाँव गया था, छतरपुर वापस जा रहा हूँ ।' समय काटने के लिए मैंने दो संतरे खरीदे । एक स्वयं खाने लगा और दूसरा उस विद्यार्थी को देना चाहा । किन्तु संकोचवश उसने संतरा नहीं लिया । मैंने पूछा—'क्या संतरा नहीं खाते ?'

'पेट ठीक नहीं है'—उसने बहाना बनाया ।

मैंने कहा—'फल तो फायदा करते हैं । लो, खाओ ।'

वह मेरे आग्रह को न टाल सका और मुझसे संतरा लेकर खाने लगा कि तभी बस आ गई । हम दोनों भी अन्य सहयात्रियों के साथ बस में बैठ गये और कुछ समय पश्चात् बस चल दी ।

मऊरानीपुर में अपनी सीट पर बैठा मैं एक पत्रिका पलट रहा था कि तभी अपनी दाहिनी हथेली पर दो सिगरेटें रखकर उस विद्यार्थी ने सहज भाव से मुझसे प्रश्न किया—'सर, आप सिगरेट लेंगे ?'

'मैं सिगरेट नहीं पीता'—मेरा उत्तर सुनकर बड़े विस्मय से उसने मेरी ओर देखा और मुझे ऐसा लगा कि 'गुरु दक्षिणा' स्वीकार न कर सकने के कारण आधुनिक एकलव्य की परीक्षा में द्रोणाचार्य जैसे फेल हो गया ।

सहानुभूति

मई की तपती दोपहर । बस लगभग २ बजे बसोबई के पुल पर रुकी । अपना सूटकेस लेकर मैं बस से उतरा । वहाँ चायपान की इकलौती दुकान

पर पता किया कि पुलिया से कोई सवारी आई अथवा नहीं ? नकारात्मक उत्तर पाकर गाँव जाने का सब उत्साह जैसे ठंडा पड़ गया । मन ही मन डाक-तार विभाग को जी भर कर कोसा । पर, इस सब से क्या होने वाला था ? प्रयत्न करने पर भी वहाँ से किसी वाहन का जुगाड़ न हो सका और आखिर यह सोचकर कि मरे बिना स्वर्ग नहीं मिलता, मैं अपना सूटकेस उठाकर पैदल ही चल पड़ा । चिलचिलाती धूप और तेज लपट के कारण बसोबई से पुलिया तक की लगभग पाँच मील की पदयात्रा भी बड़ी कठिन बन गई थी । पहले दो मील तो किसी तरह ताव में तेजी से पार कर लिए । पर जैसे-जैसे थकान बढ़ती गई, पाँवों की गति कमती गई । फिर चलना, घिसटने जैसा हो गया । हाथ बुरी तरह दुखने लगे थे और सूटकेस जैसे मुसीबत बन गया था कि तभी सिर पर कटी हुई फसल का बोझ उठाये और बाहों में अपना लाल दबाये एक ग्रामीण युवती रास्ते में मिल गई । मेरी दयनीय दशा देख उसे दया आ गई और उसने सहज रूप से कहा—'बाबू, तुम मेरा बच्चा ले लो । मैं तुम्हारा बकसा लिए लेती हूँ ।'

'नहीं, इसकी क्या जरूरत है ?' मेरा उत्तर सुनकर एक निर्विकार हँसी बिखेरती वह युवती रास्ते में आगे बढ़ गई । पर उसे क्या पता था कि अपनी सहज सहानुभूति से वह मेरी मुश्किल राह कितनी आसान कर गई ।

—११८, जवाहर रोड, छतरपुर, म० प्र०

५

स्मृतिदंश

• प्रीता व्यास

रात गहराने पर जब सब ओर सन्नाटा खिंच जाता है, मैं अक्सर बीते दिनों की स्मृतियों का पिटारा खोल कर बैठ जाती हूं, पाए हुए सुखों और दुखों का जोड़ बाकी करने। इन पचास वर्षों के जीवन में मैंने जितना जो कुछ पाया है, उससे कहीं अधिक खोया है।

दर्द से मेरा करीब का नाता है। वही तो है, जो हर ठोकर पर बढ़के थाम लेता है मुझको। परिचित चेहरों की अपरिचित धुंध में अपने अस्तित्व को टूटता देखा है मैंने। न कोई साथी है न सम्बन्धी (यूं कहने को रिश्तों का अम्बार है, पर साथ देने को कोई अपना नहीं)। एकदम अकेले जीना-कितना मारक अहसास है? जीने का सारा आकर्षण टूट जाए, तब कोरी सांसों का बोझ ढोना कितना भारी पड़ता है—किसे मालूम? न जाने क्या और भोगना शेष है? प्राणों का देह से नाता न जाने अब क्यों जुड़ा हुआ है?

मेरी विभू चली गई... मेरे तो जीवन भर की संजोयी पूंजी लुट गई जैसे। शुरू से आज तक अपने पर भरोसा करने वाली मैं क्या कुछ कर पाई? कितना विवश हो जाता है मनुष्य एक बिन्दु पर! कितना ही धन-वैभव, यश-कीर्ति हासिल कर ले, कितना ही ऊंचा उठ जाए—क्या कुछ काम आता है? मनुष्य कुछ भी हो काल के सशक्त हाथों का एक नगण्य खिलौना है—बस।

वह नियंता मेरी आंखों को हमेशा आर्द्र रखना चाहता है, शायद तभी तो कभी कुछ छीन लेता है मुझसे-कभी कुछ। बचपन में मां को छीना, किशोरावस्था में पिता को, युवावस्था में मेरे सपने तोड़े और अब···? जब जिन्दगी अस्ताचल की ओर बढ़ चली, तब उसे भी छीन लिया मुझ से, जो मेरे जीने का सहारा थी। मेरे मन की टूटन जहां विश्राम पाती थी, जिसकी एक निश्छल मुस्कुराहट पाकर मेरे सारे दुख ठहर जाते थे—वो मेरी बहुमूल्य निधि भी छीन ली मुझसे। मेरा भाग्य लिखते समय 'वह' इतना निठुर क्यों हो गया?

एक बारगी इतनी जोर से चीखने को मन होता है कि आकाश हिल जाए, धरती फट जाए। जिस आकाश और धरती ने मुझसे मेरी विभू छीन ली, उसे कंपा देना चाहती हूं। एक बार, भले ही ये संसार मुझे पागल कहे।

मेरी आस्था के सारे प्राचीर भग्न हो चुके हैं, फिर भी न जाने संस्कारों की कौन सी डोर है, जो अब भी भगवान की उस मूर्ति के आगे झुकने को मजबूर करती है, जिसकी सच्चे मन से बचपन से पूजा की मैंने। अपनी ओर से कभी कुछ नहीं मांगा—कभी कुछ नहीं चाहा, जो हुआ 'उसी' की इच्छा मानकर स्वीकार किया, पर अब तो मन का सारा संयम डोल गया है। पूछना चाहती हूं 'उससे' कि बता मेरे किस कर्म की सजा दी तूने? क्यों इतना सताया हर कदम पर मुझे? निरत सेवा मार्ग पर चलते हुए भी छली गई हूं मैं।

मुझे आज भी वह दोहा याद आता है—'सुख में सुमिरन जो करे दुख काहे को होय।' यदि मेरा वश चलता तो इस दोहे की असत्यता को प्रमाणित कर देती। अपने मन-प्राणों में उस अज्ञात शक्ति के प्रति सदा श्रद्धा व विश्वास की ज्योति जलाए रही, पर उससे क्या मिला? मेरे ललाट पर सम्भवतः अभिशाप के सिवा कुछ न लिखा होगा उसने। कभी-कभी सोचती हूं कि वह सृष्टिकर्ता इतना हृदयहीन-निठुर कैसे हो सकता है? लेकिन यदि जगत की एक-एक बात की जानकारी उसे है, तो मेरा आर्त स्वर क्यों नहीं सुन पा रहा है?

मेरे अन्तर्मन में दुख का कोई महासागर उफन रहा है। अनेकों प्रश्न प्रश्न मस्तिष्क को मथे जा रहे हैं। जीवन पर से मेरा विश्वास उठता जा रहा है। यात्रा दिशाहीन हो चली है और मार्ग अन्धकारमय। अब कौन आएगा प्रकाश की किरण बनकर मेरे जीवन में। मेरे जीवन का प्रकाश तो मेरी विभू ही थी। मेरे प्राण क्षण-प्रतिक्षण घुटने लगे हैं, किन्तु मैं इतनी भाग्यशाली कहां कि दशरथ की तरह उसके वियोग में मर सकूं।

बार-बार एक आवाज मेरे मन के एकदम गहन-गम्भीर अन्तर्मन से उठती है, जो मेरे स्मृति पटल को थपथपाती है और मैं व्याकुल होकर नीले आकाश की ओर निहारा करती हूं कि अब मैं क्या करूं? एक नन्ही सी, सजी-धजी, प्यारी सी लड़की अक्सर सपने में दिखाई देती है—बांहें पसारे मेरी ओर आती हुई—"मां···" और मैं छटपटा उठती हूं कि मैं तुझे कैसे पाऊं? मेरी विभू···तू क्यों छोड़ गई अकेला मुझे?

मैं ये जानती हूं कि आंसू दुर्बल मन का प्रतीक है और यह भी जानती हूं कि संसार के किसी दुख की आग आंसुओं के जल से बुझा नहीं करती···

फिर भी जब तक आँसू छलक नहीं पड़ते, मेरा मन हल्का नहीं होता। इन आँसुओं के सिवा अब उसे और दे ही क्या सकती हूँ? सच पूछो तो आज मेरे दुख की इस आग में जलने का कारण यही है कि मैं उसे कुछ न दे सकी, जो बहुत मूल्यवान होता और जिसे सोचकर मुझे संतोष मिलता. प्रेम भी क्या उतना दे पाई उसे, जितना कि एक माँ को अपनी संतान को देना चाहिए? मुझे तो इतना भी याद नहीं कि कभी मैंने वात्सलय से अभिभूत हो उसे एकदम पास खींचकर उसके गाल-माथे को लगातार चूमा हो—उसे अपनी ममता से सींचा हो? कितनी अभागी हूँ मैं?···उसे मैं प्यार भी न कर पाई जी भर के।

वह मेरी क्या थी? अभी तक इसका सही मूल्यांकन मेरी आत्मा कर नहीं पाई। वह तो जैसे ममता से लबालब भरी श्रद्धा का एक प्रतीक भर थी, जो मेरे विवेक को झकझोरने आई थी। उस छोटी सी उम्र में भी कितनी स्थिरता थी उसमें? कितना संतोष था? कभी कुछ नहीं मांगा मुझसे, बाल सुलभ हठ भी नहीं। अपनी माँ की स्थिति को बहुत जल्दी समझ लिया था उसने। उसने मुझे जो दिया वह बहुत मूल्यवान था, पर मैंने उसे क्या दे पाया?

उस दिन अच्छी-भली लौटी थी कॉलेज से, बी० ए० द्वितीय वर्ष का अन्तिम पेपर देकर। 'इन छुट्टियों में क्या करना है?' मैंने पूछा था तो कह रही थी—'फिलहाल तो माँ खूब सोना है। रात-रात भर जाग कर पढ़ा है, वो कसर पूरी करनी है, फिर सोचेंगे कुछ और।' तब मुझे क्या मालूम था कि तू ऐसी गहरी सो जाएगी कि मैं जगा-जगा के थक जाऊँगी और तू आँख भी न खोलेगी, तेरे मुँह से एक शब्द सुनने को व्याकुल हो उठूँगी और तू··· खामोश पड़ी रहेगी। जिन आँखों ने तेरा ठुमकता बचपन देखा, तेरा गम्भीर कैशोर्य देखा, वो आँखें तुझे निष्प्राण देखने से पहले अपनी ज्योति क्यों न खो बैठीं?

मेरे मना करने पर भी उस दिन सिर्फ चावल खाए थे उसने। शाम को बोली—'माँ मैंने चावल खाए न आज गैस बनी रही होगी, कुछ दे दो? पेट दुख रहा है।' मैं दूसरे कमरे से टैबलेट लेकर आई, तब तक वो कुछ ज्यादा परेशान हो उठी थी। 'डाक्टर को बुलवाएँ?' मैंने पूछा तो मना कर दिया उसने—'नहीं रहने दो, ये गोली खाई ना, अभी-थोड़ी देर में ठीक हो जाऊँगी।' पर ठीक होने की जगह और छटपटा उठी थी वह। मैंने पड़ोस के एक लड़के को भेजा डाक्टर को बुलाने। गली के मोड़ पर ही एक डाक्टर की दुकान है, वह जल्दी से उन्हें ही बुला लाया। डाक्टर के आने तक वह पसीने में बेतरह नहा गई थी। उन्होंने आकर एक इन्जैक्शन दिया और न जाने उस इन्जैक्शन

रिएक्शन हुआ या क्या हुआ, वह एकदम बुरी तरह छटपटाने लगी। इतनी ठंड लगने लगी उसे कि तीन-तीन कम्बल डाल देने पर भी कांपती रही। 'माँ अब तो मेरी आँखों के आगे अंधेरा छा रहा है? मुझे कुछ दिखाई नहीं देता? मैं जा रही हूँ···' न जाने कैसी उखड़ती-सी आवाज में कहा था उसने। मैंने उसके सिर पर हाथ फेरते हुए डाक्टर की ओर देखा, मेरे मन की घबराहट मेरी आँखों में उतर आई थी। डाक्टर ने दूसरा इन्जैक्शन देने के लिए दवा सिरिंज में भरना शुरू कर दी थी। "माँ···" एक बारगी जोर से तड़पी वह और···खामोश हो गई। एक क्षण में देह का नाता तोड़ उस ओर चली गई वह। सब देखते रह गए, कोई कर पाया कुछ? उस क्षण क्या बीता मुझपर, कैसे लिखूं? सब कुछ इतनी जल्दी हुआ कि न किसी को कुछ सोचने का मौका मिला न कहने-करने का। मौत जब आती है, तो कैसे चुपचाप आती है। अजीब-अजीब बहाने लेकर आती है, कुछ नहीं तो दवा का रिएक्शन ही सही।

अब न उसके बारे में ज्यादा देर सोच पाती हूँ, न ज्यादा देर उसकी तस्वीर देख पाती हूँ। स्मृतियाँ भी डँसने लगतीं हैं जैसे। वे सत्तरह वर्ष सत्तर क्षणों की भांति बीत गए। वह मेरी असूल्य निधि थी जो छिन गई मुझसे। मैं पगलाई सी हर ओर उसे ही ढूंढ़ती रहती हूँ, ये जानते हुए भी कि अब दोबारा नहीं मिलेगी मुझे? नियम इतने अकाट्य क्यों होते हैं? विभू···।

मैं न जाने कैसे पाषाण हृदय की थी जो सह गई उसकी चिता का जलना-शेष बच रही राख का हवा में उड़ना। सुख-दुख में मेरा साथ देने वाली मेरे प्राणों को शीतल करने वाली वो नन्ही धारा न जाने कहाँ चली गई? मैं अब अपने इस रसशून्य जीवन में उसके स्नेह की एक-एक बूंद को याद करके तड़पा करूँगी। उसने कितना दिया मुझे ··और मैं अभागी उसकी झोली में अपनी ममता के चंद मोती भी न भर सकी।

काश, एक बार—सिर्फ एक बार तुझे पा जाऊँ मैं, थोड़ी देर को ही सही। मैं जी भर के तुझे प्यार करना चाहती हूँ। आज मेरा मातृत्व तड़प रहा है, जरा देर को ही लौट आ बेटी।···मेरे इस धधकते हृदय पर एक बार अपने स्नेह का ठंडा फाया रख जा—सिर्फ एक बार, तेरी इस तड़पती वियोगिनी माँ को शान्ति तो मिलेगी। इन पचास वर्षों में केवल अपने पुरुषार्थ पर भरोसा करने वाली तेरी माँ आज कितनी असहाय और दीन हो गई है। आज तक क्रूर काल के कितने ही थपेड़े खाती आई हूं, पर इतना असहाय मैंने स्वयं को कभी नहीं पाया। आज तेरी स्मृति में मन में उठते भावों के तूफान को थाम पाना मेरी सामर्थ्य के बाहर हो रहा है। तू नहीं आती, तो मुझे ही बुला ले वहाँ।

मेरा मन न जाने कितनी तेजी से बीते वर्षों में बार-बार जिया करता है। कितने ही मोड़ फिर-फिर याद आ जाते हैं। आज तू नहीं है, तो दुख और अपमान के वे क्षण भी याद आ-आ कर मुझे सता रहे हैं। तेरे लिए मैंने सब कुछ भुला दिया था, पी गई थी उस अपमान को, पर अब वे जख्म भी जैसे हरे हो गए हैं। अकेली रह गई हूँ, तो सब याद आते हैं। जिनने कभी मुझे ठुकराया था, क्या विवश होकर उन्हीं का सामीप्य स्वीकारूँ? मुझे याद है तूने कहा था एक बार—'जो सिर्फ अपने लिए जीता हो, वह कैसा मनुष्य है? दूसरे के लिए अपने अभिमान को होम कर देना चाहिए। जिन्दगी भर के प्यार का मूल क्षण भर के अपमान से अधिक है।' बता तो मुझे तेरे बाल मन में इतनी बड़ी बात कहाँ से आ गई? मैं जिसे अपने पचास वर्षों के जीवन में नहीं समझ पाई, उसे तूने सोलह वर्ष की छोटी सी उम्र में कैसे कह दिया? सोचती हूँ उचित-अनुचित का विचार छोड़ दूँ—वही करूँ जिससे मेरे समाप्त मन को शान्ति मिले, फिर मेरे साथ भी तो व्यवहार करने वालों ने उचित-अनुचित की निष्पक्ष कसौटी नहीं रखी थी कभी।

तुझे गए दो साल होने को हैं, पर आज तक मैं खुद को संभाल नहीं पाई। मैं अपने मन को आखिर कहाँ और कैसे लगाऊँ? जगत का तो मुझे पहले ही बड़ा कठोर, वास्तविक परिचय मिल चुका है। न तुम्हारे पिता से सहारे की उम्मीद है, न दोनों बड़े भाइयों से। मेरा स्वाभिमान मुझे झुकने भी तो नहीं देता।

अन्तरात्मा व्याकुल है, मस्तिष्क शून्य हो चला है। हृदय को दग्ध कर देने वाली व्यथा किससे कहूँ? मेरे इस व्यथित मन को-कोई तो हो जो थाम ले। क्या तेरे वियोग में मैं इतनी दुर्बल हो जाऊँगी विभू कि उसी के कंधे पर सर रखकर रो पड़ूँगी, जिसके अपमान से आहत हो उसके पास कभी न लौटने का संकल्प ले कर आई थी?

मैंने सिर्फ तेरे पीछे जीने का मोह जगाया था विभू, वरना मन तो एकदम बिखर चुका था। धीरे-धीरे अन्दर का ये अहं पुष्ट होता गया था कि मैं अपनी कमाई से खा रही हूँ (रुखा-सूखा जैसा भी), किसी के आगे हाथ फैलाने नहीं जा रही। मन का कोई कोना सम्बन्धों के प्रति नरम होना भी चाहता तो वो अहं फिर आड़े आ जाता। उनके और मेरे बीच दूरी बढ़ती गई। तब मैं एकदम इतना नहीं खिंच जाती, तो शायद बाद इतनी बुरी तरह नहीं टूटती। पर मुझे किसी की जरूरत ही कहाँ रह गई थी? उस अपमान ने सारी भावनाओं का-स्नेह का गला घोंट दिया था। जो कुछ शेष था, वो तुझ पर आ कर

विश्राम पा लेता था। तब मुझे क्या मालूम था विभू कि एक दिन तू भी मेरी सारी ममता को चुनौती दे (रोक सकती हो मुझे?) उस ओर चली जाएगी। मैं तेरे ही साथ क्यों न जा पाई उस महायात्रा पर?

तेरे बगैर अब इस घर में रहना कितना भारी पड़ता है, तुझे क्या मालूम आफिस में जितना समय कट जाता है, कट जाता है, बाकी तो एक अजीब सी छटपटाहट में गुजरता है। पल-पल जैसे एक युग हो। एक-एक चीज को देखकर तेरी याद आती है। कितनी-कितनी बातें याद आती हैं, तुझे कैसे भुलाऊँ बेटी? मेरे अन्दर की सारी स्थिरता कहीं खो गई है। अन्दर तो दर्द का एक समन्दर है—हरा समन्दर-जो मेरे मन में ही उफनता रहता है, मेरी चेतना को ढाँपती एक खामोशी है—जड़ खामोशी और हैं स्मृतियों के दंश। अपने जीवन में यही—तीन चीजें जुटा पाई हूँ मैं-दर्द, खामोशी और दंश।

सच विभू, मैंने सब सहा था, बड़े से बड़ा दर्द भी चुपचाप पी गई थी—कुशालता से, एक आँसू भी न आने दिया था कभी, पर आज······? आज तो इतनी कमजोर हो गई हूँ कि तेरी उम्र की लड़कियों की कहीं हँसने-चहकते देखती हूँ तो एकदम मन न जाने कैसा हो उठता है, न जाने अन्दर से कैसी तड़प उठती है कि बिना ये सोचे-समझे कि मैं सड़क पर जा रही हूँ या कहाँ हूँ, कितने लोगों के बीच बैठी हूँ, मेरी आँखें डबडबा जाती हैं। मैंने कहा ना—मेरी स्थिरता खो गई है। मैं मन को बिलकुल नहीं सम्हाल पाती। कैसे सम्भालूँ? जो मेरे हृदय के हर कोने में छुपी है जो मेरे घर से जर्रे-जर्रे में बसी है, उसे मैं रात-दिन पगलाई सी तलाशती रहती हूँ—वो नहीं मिलती, तब भला कैसे सम्भालूँ खुद को? वेदना को उसके चरम तक भोगा है मैंने।

लोग सिर्फ औपचारिकता निभाने आते हैं। क्या मैं उनको अपनी पीड़ा समझा पाती हूँ? पीड़ा तो स्वयं को ही भोगना होती है, उसका बंटवारा असम्भव है। फिर भी जब तेरी याद में प्राण अधिक छटपटाने लगते हैं, तो लगता है कि कोई तो साथी होता, जिससे तेरी स्मृति की बातों को जी खोल कर कह पाती। जीवन की इस महायात्रा में कितनी अकेली रह गई हूँ मैं! मूक दीवानों को बार-बार अपनी व्यथा सुनाते रहना और उन्हीं से सर टिका कर रो लेने के अलवा और कोई चारा नहीं। कोई नहीं जो आँसू पोंछ दे। यूँ भी दर्द का साथी कभी इस दुनिया में किसी ने पाया है कहीं? चुप रहकर सारा दर्द पी जाओ—यही नियति है।

—नरसिंहपुरवा, छतरपुर,

दीपक हो गया मन

● सुरेन्द्र कुमार सिन्हा 'अंजलि'

नये परिवेश में
परिचय, नया सर्जन
जहां पर लाज के कौतूहली ये टूटते बंधन
मौसमी बदलाव से क्या हूँ कहीं उन्मन
ये कैसा हो गया मन... ?
ये कैसी आग है जिसने जला दी वासना मेरी
वेदना चंदन हुई, हर सांस की डोरी
अगर तुमको कहूँ मैं मानसी स्नेह की सरिता
बही जाती है अविरल धार, छंदों से सजी कविता
जुही रचना धरातल से नया संकेत देती है
समर्पण भाव को अभिनव सजल रस प्राण देती है
शब्द की गागर सहेजे जी गया क्षण
ये रसमय हो गया मन ।
निरंतर जूझना अपने अंधेरों से
यही है प्रश्न जीवन के गणित का
धरे संकल्प चेतन का बढ़ें आगे
चलो फिर दर्द के उत्तर नये खोजें
नया अनुराग संसृति में नये अध्याय गढ़ता है
हारना संभव नहीं, विश्वास कहता है
टूटती कड़ियां तभी संदर्भ जुड़ते हैं
गहन हो वेदना जितनी, गहन 'नवगीत' रचते हैं ।
माना प्रसव-पीड़ा कली को जन्म देती है
(पर) फूल की हर पांखुरी बेहद गमकती है
रात से जन्मी किरन संदेश देती है
करें स्वीकार दीपक का निमंत्रण
यही है चेतना-सम्बल, यही पूजा-नमन
अलौकिक हो गया मन
ये दीपक हो गया मन ।

—हिन्दी विभाग, शासकीय महाविद्यालय, महाराजपुर।

तुम नेह भरो अंतर के दीपक में

□ रामरतन अवस्थी

तुम नेह भरो अंतर के दीपक में
मैं ज्योति जगाऊँ दीपमालिका जल जाये,
इस धरती की काली तस्वीर बदल जाये ।
बिन साथ कोई कितना चल पाता है ?
बिन तपन लोह उर कब गल पाता है ?
रचना की रेखा हाथों का लघु खेल है,
रजनी बिन चंदा कब खिल पाता है ?
तुम दर्द भरो मेरे रीते स्वर में
मैं गीत सुनाऊँ हिम पानी बन गल जाये ।
मेघा झरते हैं—क्या घट जाता है
लेकिन प्यासों का दुख बँट जाता है ।
तय समझो, फूलों के खिल जाने से
शूलों का भी जीवन कट जाता है ।
तुम गंध भरो बगिया की कलिका में
मैं मँडराऊँ अन्तर को छलिया छल जाये ।
क्यों झुक जाता है धरती पर अम्बर ?
तट से क्यों टकराती हर एक लहर ?
आखिर ऐसा भी क्या है प्राची में,
शरमा जाया करती हर एक सहर ?
तुम नीर भरो नयनों की बदरी में
मैं बरसूं तो जग सावन सा झिलमिल भाये ।
यह धरती है, युग युग से प्यासी है ।
रजनी काली है, भोर कुहासी है ।
लगता है, हर चेहरे पर बदली है
बस इसीलिए हर आँख उदासी है ।
तुम प्यार भरो धरती के कण कण में
मैं हास भरूँ तो पीर नीर बन ढल जाये,
इस धरती की काली तस्वीर बदल जाये ।

—२/६ बिलहरी रोड, नौगांव, (म० प्र०)

तरल तिमिर अभिषिक्त घटाएं

● भालचन्द्र शुक्ल

तरल तिमिर अभिषिक्त घटाएं
विभावरी का हाथ बटाएं।
शून्य भूमि नीरव की ऊमस,
दीपहीन यह कानन सूना
कहां जाऊँ मैं पथिक बिछूना।
मैं हूँ प्रकाश का प्रेमी प्रिय, फिर मिला मुझे क्यों अंधकार।
आकंठ फँसा, दलदल गहरी
घनघोर घटा, निशि है प्रहरी।
अति दूर निमज्जित निद्रा में,
बेसुध पंकज गहरा पुष्कर
व्यथित थकित अलसाया अंतर।
मैं हूँ पंकज का प्रेमी प्रिय, फिर क्यों कीचड़ के अलंकार।
सैकत में तरनी का चलना
नेहहीन दीपक का जलना।
जटिल बनावट के निर्माता,
बिना तार की सुंदर बीना
कहां पाये स्वर झीना-झीना
इसमें कृति का है कौन दोष, दोषी निर्माता कलाकार।

—द्वारा डा० बलभद्र तिवारी, पुरबियाऊ टौरी, सागर।

दीपक बेचारे रोशनी करते चले गए

● रमेश चौरसिया 'आकुल'

हम दुख की घाटियों में उतरते चले गए
दर्दों के चित्र दिल पै उभरते चले गए॥
बहरे युगों से कहते रहे ग़म की दास्तां,
आँसू नयन की कोर से बहते चले गए।
औरों के माजरे कभी सुलझा सके न हम,
अपनी ही गुत्थियों में उलझते चले गए।
सुख की मरीचिका में प्यास बुझ नहीं सकी,
हम जिन्दगी से दूर भटकते चले गए।
सूरज के घर में अन्धकार छा गए घने,
दीपक बेचारे करते रोशनी चले गए॥

—व्याख्याता, शा० उ० मा० विद्यालय, लौंड़ी

कवि कुमारमणि के आश्रयदाता की खोज

● डा० देवेन्द्र सिंह

कुमारमणि रीतिकालीन कवि हैं। इनकी गणना लक्षण-ग्रंथकारों में होती है। हिन्दी भाषा में इनका एक मात्र उपलब्ध ग्रंथ 'रसिक-रसाल' है। यह ग्रंथ काफी पहले कवि के वंशज कण्ठमणि शास्त्री विशारद द्वारा संपादित होकर श्री विद्या विभाग कांकरोली से संवत् १९९४ में प्रकाशित हुआ था। इसमें कवि-परिचय और ग्रंथ-परिचय सम्बन्धी विस्तृत भूमिका भी दी गई है। 'रसिक-रसाल' की रचना संवत् १७७६ में हुई थी—

रस[६] सागर रवि-[७]तुरग[७] विधु[१] संवत मधुर वसन्त।
विकस्यो रसिक रसाल लखि हुलसत सुहृद व सन्त॥[1]

कुमारमणि के बनाए दो और ग्रंथों की चर्चा भी की जाती है। एक 'रसिक-रंजन', जिसमें साहित्य के २१ विषयों पर संस्कृत-आर्याएँ संग्रहीत हैं और दूसरा है 'कुमार-सप्तशती'।[2] 'रसिक-रंजन' का रचनाकाल १७६५ वि० है।[3] मोटे तौर पर कवि का जन्मकाल संवत् १७२०-२५ के आसपास माना जा सकता है। मृत्युकाल के सम्बन्ध में भी कोई निश्चित तिथि उपलब्ध नहीं होती। संवत् १७७९ तक कवि के वर्तमान होने के प्रमाण सुलभ हैं।[4] शिवसिंह सेंगर ने अपने सरोज में इनका 'उ० काल १८०३' लिखा है, साथ ही इन्हें गोकुल निवासी कहा है।[5] यह 'उ०' उपस्थित काल ही हो सकता है, उत्पन्न काल कदापि नहीं। संवत् १८०३ तक कवि का उपस्थित होना असंभव नहीं है। यह इनका अंतिम जीवनकाल हो सकता है। संभव है अपने अंतिम समय में कवि गोकुल में निवास करने लगा हो। ग्रियर्सन ने १८०३ को जन्म-काल समझ लिया है। उन्होंने इसमें ५७ वर्ष घटाकर कवि का जन्मकाल

---

१. रसिक-रसाल (ग्रंथ-पूर्ति) पृष्ठ सं० २९९।
२. रसिक-रसाल (भूमिका भाग) पृष्ठ सं० २७-२९।
३. रसिक-रसाल (भूमिका भाग) पृष्ठ सं० ४।
४. रसिक-रसाल (भूमिका भाग) पृष्ठ सं० ४।
५. शिवसिंह सरोज, संपादक-डा० किशोरीलाल गुप्त, पृष्ठ सं० ६५८।

१७४६ ई० लिखा है। इसी प्रकार 'भट्ट' को 'भांट' समझकर कवि परिचय में इन्हें 'ब्रज के भांट' कहा है।[१] वस्तुतः यह दाक्षिणात्य 'भट्ट' ब्राह्मण थे, 'भांट' नहीं।

यहाँ हमें मुख्य रूप से कुमारमणि के आश्रयदाता के सम्बन्ध में विचार करना है। कवि ने अपने 'रसिक-रसाल' नामक ग्रंथ के कई छंदों में 'रामनरेन्द्र' की प्रशस्ति गाई है। नाम के अतिरिक्त 'रामनरेन्द्र' के सम्बन्ध में और कोई संकेत नहीं मिलता। तद्विषयक कुछ छंद यहाँ उद्धृत किए जाते हैं—

रामनरिंद की फौज के धाक हिये हहरी जल छीन ज्यों मच्छी।
दहि दरीनि दुरी गिरि कच्छनि सिघनि दीनता लच्छि न भच्छी।
तच्छन एक कहूँ थिरलच्छ न लच्छ छनच्छबि सी तन लच्छी।
गौन अलच्छित गच्छतीं तच्छन वंच्छतीपच्छ विपच्छ मृगच्छी॥[२]

वंदत लोल अनंदित है गुन-वृंदनि रामनरिंद सो को है।
मारद चंद बिसारद कित्ति तिहारि ये एक हरैं तम मो है।
तेग सों पच्छ-विहीन करौ अरि भूधर वज्र सों वासव जो है।
छाये दिगंतनि ही दल सों तुम वद्दल सों ऋतु पावस सोहै॥[३]

रामनरिंद की सैंन सजैं अरि-नारि अलंकनि संकती केती।
चंदमुखी भजि जोर बिलंद गिरिंद चढ़ै, न उसासनि लेती।
आपनें पास 'कुमार' तहाँ लखि चंद अनंग गहे हिय वेती।
जानि विहार को हंस निहार ता हार के मोती अहार कों देती॥[४]

इसी प्रकार के और भी छंद मिलते हैं। इनसे स्पष्ट ज्ञात होता है कि कुमारमणि किसी 'रामनरेन्द्र' नामधारी राजा के आश्रय में रहे थे। तभी तो उन्होंने उसकी प्रशस्ति अपनी कविता में गाई है। यह 'रामनरेन्द्र' कौन थे, कहाँ के शासक थे—आदि के सम्बन्ध में कवि ने कोई संकेत नहीं किया।

रसिक-रसाल के सम्पादक ने भूमिका में कवि के आश्रयदाता का प्रश्न भी उठाया है। मिश्रबन्धु विनोद, हस्तलिखित हिन्दी पुस्तकों का संक्षिप्त विवरण (नागरी प्रचारिणी सभा) आदि ग्रंथों का हवाला देते हुए उन्होंने लिखा है कि "उपस्थित उद्धरणों से यह निश्चत होता है कि कवि कुमारमणि के समकालीन हिन्दी-काव्य के प्रश्रयदाता ही नहीं, प्रत्युत स्वयं कवि रामराय अथवा रामचंद्र

---

१. हिन्दी साहित्य का प्रथम इतिहास, अनुवादक-किशोरी लाल गुप्त, पृष्ठ सं० २६।

२. रसिक-रसाल, पृष्ठ सं०-४, छंद सं०-१४।

३. रसिक-रसाल, पृष्ठ सं०-१६३, छंद सं-६१।

४. रसिक-रसाल, पृष्ठ सं०-१५८, छंद सं०-७४।

किंवा रामसिंह नामक दतिया के राजा थे, संभवतः यही कवि कुमारमणि के आश्रयदाता रहे हों।"[१]

डा० किशोरी लाल गुप्त इस सम्बन्ध में लिखते हैं—"दतिया के राजा रामसिंह के यहाँ इनका विशेष सम्मान था।"[२]

दतिया में रामचन्द्र नामक राजा थे, यह इतिहास से सिद्ध है। इनका नाम 'राय रामचन्द्र' भी मिलता है। गोरेलाल तिवारी का कहना है कि—"दतिया वास्तव में ओड़छे राज्य की एक बड़ी जागीर थी।...इस समय दतिया के जागीरदार राय रामचंद्र थे।"[३] दतिया के राजाओं की वंशावली में 'रामचंद्र' और 'रामसिंह' नाम के दो राजाओं का उल्लेख मिलता है। पहले रामचन्द्र और फिर उनके पुत्र रामसिंह।[४] ऊपर विद्वानों के जो कथन उद्धृत किए गए हैं, उनमें इन नामों को लेकर भ्रम है।

मिश्रबन्धु विनोद में एक 'रामराय' नामक कवि का उल्लेख मिलता है। विवरण इस प्रकार है।

"नाम—रामराय भगवान जू (राधावल्लभी)। ग्रंथ-स्फुट पद।

कविताकाल—१७६०। विवरण—यह महाशय कहीं के राजा थे।"

सम्भव है यह दतिय नरेश राय रामचन्द्र ही हों।

कुमारमणि दतिया नरेश के आश्रय में थे ऐसा मानने के पीछे विद्वानों ने कोई ठोस प्रमाण नहीं दिए। हमारा विचार है कि कुमारमणि दतिया-राज्याश्रय में नहीं थे। इस प्रकार की मान्यता के निम्नलिखित आधार हैं—

१. किसी कवि और शासक का समय एक साथ होने से ही कवि को उस शासक के आश्रय में नहीं माना जा सकता।

२. कुमारमणि ने अपनी रचनाओं में जहाँ 'रामनरिंद', 'राम नरपाल', 'रामनरेस' आदि नामों से सम्बोधन किया है वहाँ एक बार भी 'रामचन्द्र' या 'राय रामचंद्र' नाम का व्यवहार नहीं किया। यदि कहीं 'राम' या 'रामचन्द्र' नाम आया भी है, तो वे छंद दशरथ पुत्र श्री राम के वर्णन से सम्बद्ध हैं।

३. रसिक-रसाल के सम्पादक ने स्पष्ट लिखा है कि कुमारमणि का स्थायी निवास स्थान सागर जिले का 'गढ़पहरा' ग्राम था। यह 'गोंडवाना' क्षेत्र में पड़ता था। यहाँ के शासक 'गोंड' थे। दतिया बुंदेलखण्ड में पड़ता है। ऐसे

---

१. रसिक-रसाल, भूमिका, पृष्ठ सं० १२-१३।

२. सरोज-सर्वेक्षण, पृष्ठ सं० १६६।

३. बुंदेलखण्ड का संक्षिप्त इतिहास, पृष्ठ सं० २१३।

४. बुंदेलखण्ड का संक्षिप्त इतिहास, पृष्ठ सं० ३६३।

स्थिति में कुमारमणि का दतिया दरबार में होना असम्भव नहीं तो संदिग्ध अवश्य है।

४. दतिया राज्य के आश्रय की पुष्टि में प्रमाण देते हुए कण्ठमणि शास्त्री विशारद लिखते हैं—"सम्प्रति भी कवि कुमारमणि के वंशज, इस लेखक के पितृचरण पूज्य बालकृष्ण शास्त्री जी को भी दतिया से राजगुरु का सम्मान प्राप्त है। इसी प्रकार पूर्व में भी (सन् १८५७ के गदर के समय) बालपुर के उजड़ जाने पर कुमारमणि के वंशज पं० बिहारीलाल शास्त्री जी कवि भी दतिया में आकर बसे थे और उन्हें राज्याश्रय प्राप्त हुआ था।"[2] विशारद जी ने इस सम्बन्ध में कोई प्रमाण नहीं दिया कि कुमारमणि के वंशजों को यह सम्मान उन्हीं के समय से प्राप्त होता रहा है। संभव है कि कुमारमणि के बाद उनके वंशज यहाँ आए हों। इस प्रकार उपर्युक्त कथन से भी इस बात की पुष्टि नहीं होती कि कुमारमणि दतिया-राज्याश्रय में थे।

तब फिर प्रश्न उठता है कि कुमारमणि के आश्रयदाता कौन थे। इस सम्बन्ध में हमने व्यापक छानबीन की है और इस निष्कर्ष पर पहुँचे हैं कि कुमारमणि गोंड राजा 'नरेन्द्र साहि' के आश्रय में थे। इस निष्कर्ष तक पहुँचने के पर्याप्त कारण हैं, जिनका विवेचन आगे किया जायेगा। पहले राजा नरेन्द्र साहि का परिचय प्राप्त कर लिया जाय।

नर्मदा के दक्षिण और ताप्ती तथा वर्धा नाम की नदियों के उत्तर का क्षेत्र 'गोंडवाना' कहलाता है। इस क्षेत्र में 'गोंड' जाति के राजाओं का शासन लम्बे समय तक रहा। इनकी शासक-वंश-परम्परा काफी बड़ी है। इसी वंश में 'नरेन्द्र साहि' नामक राजा हुए हैं। नरेन्द्र साहि के शासनकाल के सम्बन्ध में इतिहासकारों में मतभेद है। मैथिल श्री रूपनाथ के अनुसार यह संवत् १७७० में गद्दी पर बैठा और २५ वर्ष तक राज्य करते हुए १७९५ वि० में इसकी मृत्यु हुई। स्लीमैन के मत में इसके राज्यारंभ का वर्ष संवत् १७४८ (सन् १६९१) है और इसने ४० वर्षों तक राज्य किया। जब कि पं० गणेशदत्त पाठक का मत है कि इसका राज्यारंभ १७४४ वि० में हुआ तथा इसने

१. मिश्रबन्धु विनोद (खण्ड १-२), पृष्ठ सं० ३४३, कवि सं० ७५५

२. रसिक-रसाल, भूमिका, पृष्ठ सं० १३

४५ वर्षों तक शासन किया, इस प्रकार इसकी मृत्यु १७८९ वि० में हुई।[1] गोरेलाल तिवारी भी इसकी मृत्यु संवत् १७८९ में मानते हैं। किन्तु उन्होंने शासनकाल ३७ वर्ष माना है।[2] रामभरोस अग्रवाल इसका समय संवत् १७४५ से १७८९ वि० तक मानने के पक्ष में हैं।[3]

इन मतों के आधार पर कहा जा सकता है कि नरेन्द्र साहि संवत् १७८९ तक निश्चित रूप से वर्तमान थे। विवाद मुख्यतः राज्यारंभ के समय को लेकर है। इनके पिता का नाम केसरी साहि था। राजधानी रामनगर थी। नरेन्द्र साहि के पितामह हृदय साहि ने रामनगर को राजधानी बनाया था। नर्मदा और बुढ़नेर के संगम में देवगाँव स्थित है, तथा नर्मदा और बंजर के संगम में मण्डला है। इन दोनों संगमों के मध्य अर्थात मण्डला और देवगाँव के बीचोबीच रामनगर पड़ता है।

आइये, अब उन कारणों और उपलब्ध सामग्री का अवलोकन किया जाय, जिससे सिद्ध होता है कि कुमारमणि गोंड राजा नरेन्द्र साहि के आश्रय में थे—

१. कुमारमणि ने अपने छंदों में 'रामनरिंद' नाम का उल्लेख कई बार किया है। 'नरेन्द्र' ही बिगड़कर 'नरिंद' हुआ है इसमें कोई संदेह नहीं। यहाँ तक कि कुछ इतिहासकारों ने इसका नाम 'नरिंदशाह' या 'नरिंद सिंह' ही लिखा है।[4] जहाँ तक 'राम' का प्रश्न है, हो सकता है इसका पूरा नाम 'रामनरेंद्र' ही रहा हो। किन्तु इतिहास ग्रंथों में यह नाम मिलता नहीं है। इसलिए इस सम्बन्ध में प्रामाणिक रूप से नहीं कहा जा सकता। संभव है कवि ने सम्मान प्रदर्शन हेतु 'नरेंद्र' के पहले 'राम' जोड़ दिया हो। 'राम नरपाल'[5] 'राम नरेस'[6] आदि सम्बोधनों के पीछे भी यही बात जान पड़ती है। या फिर यह भी हो सकता है कि चूँकि राजधानी रामनगर थी, इसलिए कवि ने कलात्मक रूप देते हुए शासक के नाम के साथ राजधानी के नाम को भी समाहित कर दिया हो।

१. रामभरोस अग्रवाल लिखित 'गढ़ा मण्डला के गोंड राजा' (पृष्ठ-११६) नामक पुस्तक पर आधारित।

२. बुंदेलखण्ड का संक्षिप्त इतिहास, पृष्ठ सं० ११०।

३. गढ़ा मण्डला के गोंड राजा, पृष्ठ सं० ९७।

४. बुंदेलखण्ड का संक्षिप्त इतिहास, गोरेलाल तिवारी, पृष्ठ सं० १०९-११०।

५. रसिक-रसाल, पृष्ठ सं० ३१-३२, छंद सं० ६६ तथा पृ० सं० १५३ छंद सं० ५९।

६. रसिक-रसाल, पृष्ठ सं० १९५, छंद सं० २३५।

२. कुमारमणि का स्थायी निवास स्थान सागर जिले का 'गढ़पहरा' ग्राम था।[1] यह क्षेत्र गोंडवाने में पड़ता है। इससे भी सिद्ध होता है कि कवि गोंड राजा के आश्रय में रहा होगा। चूंकि समकालीन शासक नरेंद्र साहि ठहरते हैं और उनका नाम भी कवि-रचित छंदों में मिलता है, इसलिए वही कवि के आश्रयदाता निश्चित होते हैं।

३- रामनगर में एक शिलालेख मिला है, जिसमें गोंड राजाओं की वंशावली दी है। यह शिलालेख हृदय साहि के शासनकाल में उत्कीर्ण हुआ था। इसमे तिथि दी हुई है—

> वेदनेत्रहयेन्द्वब्दे ज्येष्ठे विष्णुतिथौसिते।
> सदाशिवेन लीखितमुत्कीर्णं तैः सुशिल्पभिः॥[2]

अर्थात् वेद (४), नेत्र (२), हय (७) और चन्द्र (१) के वर्ष में ज्येष्ठ मास के शुक्ल पक्ष की विष्णु तिथि में सदाशिव ने लिखा और उन कुशल कारीगरों ने उत्कीर्ण किया। स्पष्ट है कि संवत् १७२४ वि० में यह शिलालेख उत्कीर्ण किया गया था।

इसके रचयिता जयगोविंद थे—

> सुकीर्त्ते-मीमांस-विवरण-गुरो-स्तर्क-जयिनः।
> सुतनश्छंदोंग-प्रवचन-पटो-मंडणकवेः।
> तदीया देशेन अरचि जयगोविंद-विदुषा।
> समासात्त द्वीश-क्षितिप-विषये-वर्णनमिदम्।[3]

अर्थात् जयगोविंद नामक विद्वान ने राजाओं के विषय में संक्षेप में यह वर्णन किया है। जयगोविंद ने अपने पिता मंडन कवि की आज्ञा से यह रचना की। मंडन की कीर्ति अच्छी है। मीमांसा के प्रकण्ड पंडित हैं, तर्क शास्त्र के विजेता हैं, छंदों के अंगों को जानते हैं और प्रवचत में पटु हैं'

जयगोविंद राजमंत्री और पुरोहित थे।[4] वे संस्कृत और हिन्दी दोनों भाषाओं के प्रकांड पंडित थे। उन्होंने दोनों भाषाओं में काव्य-रचना की है।[5] कुमारमणि ने जयगोविंद की स्तुति गुरु रूप में की है—

१. रसिक-रसाल, भूमिका, पृष्ठ सं० १३।
२. गढ़ा मंडला के गोंड राजा नामक पुस्तक के पृष्ठ १३६ से उद्धृत।
३. गढ़ा मण्डला के गोंड राजा नामक पुस्तक के पृष्ठ १३६ से उद्धृत।
४. बुंदेलखंड का संक्षिप्त इतिहास, पृष्ठ सं० ६८।
५. विस्तार के लिए देखिए लेखक का 'कवि जयगोविंद वाजपेयी' नामक लेख, मामुलिया, अंक-६।

> गुरगुरु-सम मंडन-तनय, बुध जयगोविंद ध्याइ।
> कवित्त-रीति गुरु-पद परसि, अरु पुरुषोत्तम पाइ॥[1]

कवि के गुरु थे। शिलालेख के स्पष्ट है कि मण्डन के पुत्र जयगोविंद कवि के गुरु थे। शिलालेख के रचयिता जयगोविंद ने भी स्वयं को मण्डन कवि का पुत्र कहा है। इससे सिद्ध होता है कि कवि के गुरु और शिलालेख के रचयिता एक ही हैं। जयगोविंद का आस्पद 'वाजपेयी' था। इनकी एक रचना 'कवि सर्वस्व' नागरी प्रचारिणी सभा की खोज में मिली है। ग्रंथ की पुष्पिका में रचयिता का उल्लेख मण्डन कवि के पुत्र के रूप में हुआ है। उपलब्ध हस्तलेख संवत् १७६५ में 'गढ़पहरा' से प्रतिलिपित हुआ था।[2] जयगोविंद के पिता मण्डन भी उच्च-कोटि के कवि थे।[3] चूंकि कुमारमणि के गुरु जयगोविंद वाजपेयी गोंड राजा हृदय साहि के आश्रय में थे, इसलिए भी कुमारमणि का नरेन्द्र साहि के आश्रय में होना ठीक प्रतीत होता है।

उपर्युक्त विवेचन से सिद्ध हो जाता है कि कुमारमणि के आश्रयदाता गोंड राजा नरेन्द्र साहि थे। इसके अतिरिक्त कवि और कहाँ-कहाँ रहा, इस सम्बन्ध में कोई निश्चित जानकारी नहीं मिलती। कण्ठमणि शास्त्री 'विशारद' ने कुमारमणि को 'झारखंड' में कुछ भूमि प्राप्त होने का उल्लेख किया है।[4] जैसा कि पहले कहा जा चुका है शिवसिंह सेंगर ने कुमारमणि को 'गोकुल निवासी लिखा है। नरेन्द्र साहि के समय से ही गोंड राज्य का पतन प्रारम्भ हो गया था। सागर और दमोह के जिले इसके हाथ से निकल गये थे। राजनीतिक उथल-पुथल बढ़ गयी थी। संभव है इन्हीं सब कारणों से कवि ने अन्तिम समय भगवद्भक्ति करते हुए गोकुल में व्यतीत किया हो।

१. रसिक-रसाल, पृष्ठ सं० २, छंद सं० ३।
२. हस्तलिखित हिन्दी ग्रंथों का सत्रहवाँ त्रैवार्षिक विवरण, सं० ७३; नागरी प्रचारणी सभा वाराणसी।
३. लेखक ने 'हिन्दी-रीतिकविता के परिप्रेक्ष्य में कवि मंडन का अध्ययन नामक शोध प्रबन्ध में इस पर विस्तार से विचार किया है।
४. रसिक-रसाल, भूमिका, पृष्ठ सं० १४।

संदर्भ ग्रन्थ-सूची

१. गढ़ा मंडला के गोंड राजा, लेख-रामभरोस अग्रवाल, प्रकाशक—रामभरोस अग्रवाल, मंडला, प्रथम संस्करण संवत् १०१८ ।

२. बुंदेलखंड का संक्षिप्त इतिहास, लेखक—गोरेलाल तिवारी, प्रकाशक—काशी-नागरी प्रचारिणी सभा, प्रथम संस्करण संवत् १९९० ।

३. मिश्रबंधु विनोद, लेखक—गणेश बिहारी मिश्र साहित्य वाचस्पति, राव-राजा डा० श्याम बिहारी मिश्र डी०लिट्०, साहित्य वाचस्पति, रायबहादुर डा० शुकदेव बिहारी मिश्र डी० लिट्, प्रकाशक—गंगा पुस्तक माला कार्यालय, लखनऊ, नवीन संशोधित एवं परिवर्द्धित संस्करण सन् १९७२ ई० ।

४. रसिक-रसाल; रचयिता—कुमारमणि शास्त्री, संपादक—कण्ठमणि शास्त्री विशारद, प्रकाशक—(श्री द्वारकेश कवि मंडल) श्री विद्या विभाग कांकरोली, संवत् १९९४ ।

५. शिवसिंह सरोज, लेखक—शिवसिंह सेंगर, संपादक—डा० किशोरी लाल गुप्त, प्रकाशक—हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग, प्रथम संस्करण सन् १९७० ई० ।

६. सरोज-सर्वेक्षण, लेखक—डा० किशोरीलाल गुप्त, प्रकाशक—हिन्दुस्तानी एकेडमी, इलाहाबाद, प्रथम संस्करण सन् १९६७ ई० ।

७. हस्तलिखित हिन्दी ग्रंथों का सत्रहवां त्रैवार्षिक विवरण, प्रकाशक—नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी, प्रथम संस्करण ।

८. हिन्दी साहित्य का प्रथम इतिहास, डा० सर जार्ज अब्राहम ग्रियर्सन बी० ए०, बी० सी० एस० कृत 'द माडर्न वर्नाक्युलर लिटरेचर आफ हिन्दुस्तान' का हिन्दी अनुवाद, अनुवादक—किशोरी लाल गुप्त, प्रकाशक हिन्दी प्रचारक पुस्तकालय, वाराणसी, प्रथम संस्करण १९५७ ई० ।

२८० बिड़ला छात्रावास
काशी हिन्दू विश्वविद्यालय
वाराणसी ।

जब जुंदैया अनी में आकें तलवा में डरी दिखानी

● गोविन्द प्रसाद वर्मा 'मधुप'

जा बात आज की नोंई, छै बिसीं बरस पैलां की आय । बताऊत हैं कै एक राजा कें एक सिपाई उजबक सिंह हते, जिनी राजा की बड़ी मैरबानी हती और बिस्वास हतो, काये सें कै राजा खों उनकी सिदाई भौतऊं नौनी लगत ती जीसें बे (राजा) उजबक सें खुसी बने रात ते और उनके सात कसूर माफ करे ते । जब कभऊं राजा गुस्साने होंय, तौ सिवाय उजबक के और काऊ की हिम्मत राजा सें बोलबे की न परत ती । बेई कौनऊ जुगत सें हुंसी की येढ़ी-टेढ़ी बात बता कें हजूर खां हंसा पाउत ते । ईसें सब कोऊ उजबक को आदर करत तो और उन्हें मानत तो । बे राजा की पलकिया को पारो देत ते, जब राजा कें असास (सोना) होत ते ।

एक दिना बड़े मजे की बात भई । पारे पै बैठतीं बेरां उजबक अपनी तुबक (बोंड़ियाऊ बड़गैनू) लै लेत ते, बैसई तरवार तौ बे बांदेई रात ते । रात में पलकिया को पैलो पारो देकें कभऊं-कभऊं बे सिकार के लानें गड़ा बैठबे सोई चले जात ते । अंदयाई रात में अनी मिलाबे खां, तुबक की मछिया पै करील बांद लेत ते, उज्यारे पाख में ऊकी चाना न परत ती । ऐसई तैयारी के संग ठाकुर उजबक सिंह पारे पै बैठे हते, उजयारी रात हती । ताल कोठी में महाराज के असास हो रये ते, खूबई गैरी नींद में घुरक चल रई ती, अधरत्ता को सन्नाटो छावो तो । बायरैं बादर में चकौटी सो चन्दा छिटको तो । साधू सन्यासिनो कों छोड़कें सारी सिसारी के जीऊ जन्त नींद के निर्भूल नसा में डूबे ते, पै पहरेदारन की आंखन में आलस को नांव न हतो ।

सरतारे बैठे उजबक जू कों न जानें का अनोटयाई सूझी कै उननें अपनो बड़गैनू तुबक बादरें में जुंदैया में जोरी और उयै अनी में मिलाओ फिर जैसो की तैसी कर लई, फिर मिलाई फिर हटा लई, ऐसो उननें केऊ बेर करो । बे तौ नामी घला हते, बारीक सें बारीक चोट उनकी खालो न जातती, फिर तौ बिजानौं सो ढंगो चन्दा उनके लानें काय हतो । उनकौ मन तौ ललच्या

रओ तो, पै बे राज के डर के मारें मन खां दबा कें रै जातते। कानात है कि 'नाचन हारी की करया फरकन लगत नाच देख कें' सोऊ दसा उजबक दाऊ की हो रई ती। उनें चैन न पर रई ती, बेर बेर बे जुंदैया में ऊनी मिलाउत ते और फिर रैन जात ते।

ऐसउँ खेल करत-करत जुंदैया अनी में आई और लबलबी पै धरी उंगरिया हल गई, जियत लुगर (बौंड़ा) ठिया पै गिरो गाज कैसी आवाज भई, गवर महल हल सो गओ। भ्यावनी रात की डरावनी आवाज ने सबकों चौंका दओ। राजा हड़बड़ा कें उठ बैठे और कोने में पायतें ठाँड़े उजबक सिंह सें पूछन लगे कै का भओ ठाकुर। उजबक नें सहज भोर कदम छूकें तुरतइं मुजरा करो और बिना डर-भै के बिनती करी कै 'गरीबपरवर कसूर माफ हो, मैंने हालऊं तुबक पै करौल बांधी ती, मन में बिचारो कै जनाउर पै अजमाबे के पैलां देख तौ लेंव कै अनी कैसी आऊत, सो अन्दाता जुंदैया में बैठकें मिलाई, भलां का कनें भगौती की कभऊं दगा नईं दई। जब तीतर, परेबा-पखेरू, चरेरु चोट सें नईं बचत, तौ हजूर बिचारी तौ जाय कें गाड़ी के पईया घाईं बिजानो बनो जुंदैया मजाल कै मोरे फैर सें बच जाय। अनी में आउतन देर नई लगी कै तुरत-फुरत-सुरत कौ खेल हो गओ। राजा ने तनक रुखयाई सें पूछी—अरे बुद्धू फिर आगें तौ बताओ का भओ, तुमारी तुबक कौ निसानो लगो कै नईं ?

उजबक के जी में जी आओ, दोऊ हाथ जोर कें, धरती छू कें भुक कें कुन्नस करकें उननें ज्वाब दओ—'दीनबंद निसानों लगो और ठिकाने सें लगो, मोय तौ जेई खुसी है। नजर होय, गोली खाकें बादर सें टूट कें जुंदैया तलवा में डरी अबैलौ हड़बड़ा रई।' (तालाब का पानी हवा के झोंकों से हिल रहा था, उसी के बीच प्रातःकालीन चन्द्रमा का प्रतिबिम्ब उजबक ने राजा को अपने कथन की पुष्टि में दिखाया)

सूद फटक्का कौ चतुराई सें भरो मौका कौ ज्वाब उजबक सिंह कौ सुनकें राजा कों हंसी आ गई और उनकौ गुस्सा उतर गओ। उननें उनें माफी बगसी, पै राजा जान गये कि जौ (उजबक) बजन्त मूरख है, कौनऊ दिना ई की मूरखत्याई सें हमाई जान जोखम में जरूर पर जैहै। भुनसारे सें उजबक खां और काम पै बदल दओ गओ।

—५, गाड़ीखाना क्वाटर्स, छतरपुर

शब्द बोलते हैं

—आचार्य दुर्गाचरण शुक्ल

कुछ शब्द ऐसे होते हैं जो संस्कृति की विकास-यात्रा में प्राप्त अर्थ की गरिमा को अपने में सँजोकर रखते हैं। ऐसे शब्द किसी भी भाषा के लिये शक्तिदायक होते हैं। बुन्देली में ऐसे बहुत से शब्द हैं, जिन्होंने संस्कृति के दाय को सुरक्षित रखने का प्रयास किया है।

समूर्तें (समूहुर्तें)—चिरगाँव, कोंच, कालपी के क्षेत्र में यह शब्द अब भी व्यवहार में आ रहा है। पहले पहल जब हल चलाते हैं, तो गाँव के लोग शुभ मुहूर्त में प्रातःकाल एक जोड़ी बैल लेकर किसी खेत में पहुँचते हैं। वहाँ पर बैलों का टीका किया जाता है। भूमि का पूजन होता है। थोड़ा सा होम होता है और आने वाले सभी किसानों के सिर पर तिलक लगाया जाता है। इसके बाद खेत को जोतते हैं। इसको समूर्तें या समूरतें कहते हैं। बहुत से लोग इस शब्द को शुभ मुहूर्त से निकला हुआ मानते हैं, पर वास्तव में यह ऐसा नहीं है। गोभिल गृह सूत्र में ४/४/२७ में सीता-यज्ञ का वर्णन है, खेत के प्रथम जोतने के समय किया जाता था। इसमें इन्द्र मरुद्गण, पर्जन्य, अशनि एवं भगदेवों तथा सीता, आशा अरडा और अन्धा देवियों को घृत की आहुति दी जाती थी। इसे सम्हुत कहा जाता था। यही सम्हुत-समहुर्तें-समूर्तें में आज सिमिट गया है। यह क्रिया आज भले ही केवल पाक-यज्ञ (रोटी अग्नि पर डालने मात्र की क्रिया) तक सीमित हो गई है, किन्तु शब्द उस सीता यज्ञ को अपने में समेटे हुये जीवित है।

डोंण और दोना—ये दोनों शब्द एक ही वैदिक शब्द द्रोण से निष्पन्न होते हैं। वैदिक काल में द्रोंण सोमपूरित कलश कहा जाता था और इसी लिये उदर भी जिसमें सोम रहता है, द्रोण कहा जाता था। डोंण इसी भाव को सुरक्षित रखता है।

पत्तों की विभिन्न दुनियों का प्रयोग भी यज्ञ में होता था, जैसे शूलगव या ईशान बलि में आठ डोंणों में रक्त भरकर दिक्पालों को दिया जाता था, यह द्रोण पत्तों के होते थे। यही बुन्देली दोना है। दुनिया संस्कार शब्द है।

इस प्रकार द्रोण के दोनों संदर्भ डोंग और दोना अलग-अलग रूपों में सुरक्षित रखते हैं।

तीन त्रिलोकी—बुंदेली भाषा में एक शब्द है तीन त्रिलोकी। 'एसो सजा आव कै तीनऊ त्रिलोकी दिखाएगा।' साधारण रूप में देखने से यह पुनरुक्ति सी दिखती है, पर वास्तव में ऐसा है नहीं। यह एक एक सुविचारित तथ्य को व्यक्त करता हुआ वाक्य है। संस्कृति का एक अध्ययन इसमें समाविष्ट है।

वैदिक विचार धारा के अनुसार हम जिस पर निवास करते हैं, वह एक पृथ्वी मण्डल है। इसे भूलोक कहते हैं। यह पूर्ण रूप से सूर्य के आकर्षण क्षेत्र में रहता है। गति करता है। सूर्य मण्डल की संज्ञा 'स्वः' है। इन दोनों के बीच जो अवकाश है, उसे अन्तरिक्ष या भुवः कहते हैं। इस प्रकार भूः, भुवः, स्वः मिलकर एक त्रिलोकी बनते हैं। इस त्रिलोकी को वेद **'रोदसी'** इस द्विवचनान्त शब्द से अभिहित करते हैं। इसमें दो मण्डल हैं, **पृथ्वी और सूर्य**।

पृथ्वी जैसे सूर्य से सम्बद्ध है, वैसे ही सूर्य 'परमेष्ठि-मण्डल' से बँधा है। 'परमेष्ठि-मण्डल' **'जनः लोक है'**। सूर्य मण्डल और परमेष्ठि मण्डल के मध्य का अवकास महः है। इस स्वः, महः, जनः तीनों मिलकर **क्रन्दसी** त्रिलोकी नाम से वैदिक वाङ्मय में गिने जाते हैं। क्रन्दसी भी द्विवचानान्त शब्द है, क्योंकि इसमें दो ही मण्डल हैं, सूर्य और परमेष्ठिः। परमेष्ठिः मण्डल जिस मण्डल से सम्बद्ध है, वह **'स्वयंभू मण्डल'**। इसे ही **'सत्यम्'** लोक कहकर पुराण स्मरण करते हैं। इन दोनों के मध्यावकाश को 'तपः' कहते हैं। इस प्रकार तीसरी त्रिलोकी **'संयती'** द्विवचनान्त शब्द से कथित है, जिसके दो मण्डल हैं 'परमेष्ठि-और स्वयंभू।'

रोदसी, क्रन्दसी और संयती ये ही तीन त्रिलोकी हैं, जिसे अनेक वेद मंत्रों में तीन पृथ्वी और तीन द्विलोकों के नाम से स्मरण किया गया है, यथा:—

'तस्रो भूमिः धारवन् तीन उत् द्यून,
त्रीणि व्रता विदथे अन्तरेषाम्। (ऋग्वेद, २/२७/८)

इस प्रकार हम देखते हैं कि तीन त्रिलोकी मिलकर ब्रह्माण्ड बनाती हैं। तीन त्रिलोकी शब्द इसी पारंपरिक ज्ञान को लोक में आज भी सम्प्रेषित कर रहा है।

—बेसिक शिक्षण विद्यालय, टीकमगढ़

पहाड़ के हिस्सों के बुंदेली शब्द

● कुंवर रणधीर सिंह

● **मगर**—पहाड़ का ऊपरी हिस्सा, जिसमें कुछ फैलाव हो। जगह ऊँची-नीची भी हो सकती है।

● **कगर**—पहाड़ के ऊपरी हिस्से का किनारा। संभवतः कगार से आया है।

● **पोंठ**—कगर से नीचे वाला पत्थरों का वह हिस्सा, जिस पर चढ़ा न जा सके।

● **दांदर**—चुल या गुफा, जो कहीं अधिक गहरी होती है और कहीं कम। इसमें नखी जानवर अपना स्थान बना लेते हैं।

● **परआ**—पत्थरों का कम गहराई वाला स्थान, जहाँ हवा, धूप आदि की सुविधा हो। इसमें जानवर हवा या धूप लेने आते हैं। बुन्देली क्रिया 'परबे' से बना है।

● **दतूसरा**—वह बड़ा पत्थर, जिसमें पहुंचा न जा सके।

● **दर्ते**—बड़े पत्थरों का समूह, जहाँ पहुँचा भी जा सकता है।

● **झोर या झवार**—पहाड़ के मध्य में कम गहराई वाला स्थान।

● **पाठौ**—पत्थर का बैठने लायक सीमित स्थान, पहाड़ के ऊपर या नीचे। संभवतः 'पठार' से बना है।

● **खँदिया**—पहाड़ की ऊँचाई पर जहाँ निचाई होकर ऊँचाई होती है, उस निचाई को खँदिया कहते हैं। उससे सुगमता से इस पार से उस पार जाया जा सकता है।

● **भाट**—पहाड़ की ऊपरी जगह, जहाँ कहीं जंगल या कहीं खुला मैदान होता है। इसकी लम्बाई-चौड़ाई मीलों में संभव है।

● **पौरा**—पहाड़ में कम गहराई वाली लम्बी जगह, प्राकृतिक किलेबंदी के लिए उपयुक्त।

● **सेहौं**—दो या तीन पहाड़ों से घिरा नीचे का हिस्सा, जहाँ पानी गिरता हो।

- **पलानी या पल्था**—पहाड़ का एक तरफ का हिस्सा ।
- **ठांटी**—कठिन चढ़ाई । ● **खरर**—कठिन उतराई ।
- **टूंगा**—वह पहाड़ी, जिसमें लम्बाई नहीं होती ।
- **टोरिया**—वह पहाड़ी, जिसमें ऊँचाई कम और लम्बाई होती है ।
- **दतारौ**—दाँतों जैसा बड़े आकार वाला ।
- **ऊसरा**—जिस स्थान की मिट्टी नुनखरी (ममकीन) हो । जानवर उसे चाटते हैं, इसलिए उसे चटना भी कहते हैं । साँभर और चीतल इस जगह वहुत आते हैं ।
- **भाटौ**—मैदान, कम जंगल वाला हिस्सा ।
- **पुछी**--पहाड़ का अंतिम हिस्सा ।
- **दोंन**—लाल मिट्टी की जगह, चाहे मैदान हो चाहे जंगल ।
- **सकरा**—सँकरी रास्ता । ● **गैलौठा**—जानवरों का रास्ता ।
- **कड़न**—जानवरों के निकालने का संकीर्ण रास्ता ।
- **पाल**—जानवरों के बैठने की जगह ।
- **चपटौरा या चपटोंन**—नीचे का हिस्सा, जिसमें मैदान कम जंगल अधिक होता है ।

—छतरपुर, म० प्र०

"मीरमंडल" के जीवंत कवि "लालविनीत'

● डा० भगवत शरण द्विवेदी

पं० कन्हैया लाल जी वंसोरिया 'लाल विनीत' का जन्म बुन्देलखंड प्रान्तान्तर्गत सागर जिले के देवरी कस्बे में सन् १८७६ में हुआ था । देवरी नगरी प्राचीन काल से ही वैभव संपन्नता लिये हुये है । पहले देवरी को देवपुरी के नाम से लोग स्मरण करते थे और देवरी प्राचीन काल में पंच महलों की राजधानी भी थी । ऐसे ही स्वरूप देवरी नामक नगरी बहुत से साहित्यकारों की जननी रही है । ये सभी साहित्यकार 'मीर मंडल' के अंतर्गत गिने जाते हैं । 'लालविनीत' जी भी मीर मंडल के ही कवियों में अपना एक महत्वपूर्ण स्थान रखते थे । आपके पिता का नाम मन्नू लाल जी वंसोरिया था । आपकी गणना देवरी क्षेत्र के बड़े काश्तकारों में की जाती थी । आज भी उन्हीं के वंशज देवरी क्षेत्र के निकटतम ग्राम चिरचिटा में रहते है । 'विनीत जी' के पूर्वज सराफी का धंधा भी करते थे । इसलिये वंसोरिया परिवार सराफ नाम से भी प्रख्यात है ।

लाल विनीत जी ने १ जनवरी, सन् १८८६ ई० को सात वर्ष की अवस्था में विद्यारम्भ लिया था । स्थानीय मिडिल स्कूल में शिक्षा छठवीं कक्षा तक प्राप्त करके सन् १८६२ में आपने स्कूल छोड़ दिया था । इसके पश्चात् अपने घर ही रहकर कृषि का कार्य सम्हालने लगे थे । सैयद अमीर अली 'मीर' जिनके नाम से 'मीर मंडल' प्रसिद्ध है एवं श्री नाथूराम जी प्रेमी जो कि लाल विनीत जी के अन्य मित्र थे, इन्हीं के आग्रह से सन् १८६८ में उन्नीस वर्ष की अवस्था में पुनः अध्ययन प्रारंभ किया । आप देवरी मिडिल स्कूल में अध्यापकों की प्रशिक्षण संस्था में प्रविष्ट हुए एवं सन् १६०१ में आपने प्रशिक्षण समाप्त कर देवरी स्कूल में सहायक की जगह प्राप्त कर ली । सन् १६१६ में देवरी नगरपालिका ने एक प्राथमिक शाला प्रारम्भ की, जिसके हेड मास्टर का पद आपको सौंपा गया । सन् १६१७ में आपका स्थानांतरण देवरी से डिस्ट्रिक्ट कौंसिल स्कूल डोभी में कर दिया गया । डोभी में कुछ वर्षों तक रहने के पश्चात् आपने अध्यापन कार्य से स्तीफा दे दिया । इसके पश्चात्

'मीर' साहब के आग्रह से 'लाल विनीत जी' छत्तीसगढ़ क्षेत्र की अम्बिकापुर स्टेट में कुछ समय तक अध्यापन कार्य करते रहे। अन्त में अध्यापन कार्य में ठीक से मन न लगने के कारण वहाँ से भी त्यागपत्र देकर घर चले आये और शेष जीवन घर पर रहकर ही व्यतीत किया।

'मीर मंडल कवि समाज' के आप एक उत्साही एवं कुशल कवि माने जाते थे। लाल विनीत उनका उपनाम था। आप भाषण देने एवं तात्कालिक कविता का सृजन करने में बहुत ही दक्ष माने जाते थे। सागर जिले की अध्या-पकीय गोष्ठी में भाषण देने पर प्रायः 'लाल विनीत जी' को ही प्रथम पुर-स्कार मिला करता था।

एक समय आप औरंगाबाद, जिला गया से निकलने वाली 'लक्ष्मी' पत्रिका के संचालक बाबू लक्ष्मीनारायण जी वकील के आग्रह से लक्ष्मी पत्रिका के संपादक गोरेलाल जी 'मन्जु सुशील' के साथ लक्ष्मी पत्रिका के सहायतार्थ चंदा करने को निकले थे, आपने अनेक स्थानों और अनेक राजाओं के यहाँ जाकर अपनी वाक्पटुता के बल पर यथेष्ट सफलता अर्जित की थी।

पद्मानरेश श्री रुद्रप्रतापसिंह द्वारा लिखित 'ज्ञान सुधारक' नामक एक ग्रंथ आपने उत्तम सरल भाषा में टीका लिखी थी। यह ग्रंथ संवत् १६६१ में श्री गोस्वामी तुलसीदास कृत रामचरित मानस के अनुकरण पर लिखा गया था। इसमें दोहा, चौपाईयों के आधार पर श्रीराम चरित्र वर्णित है। काव्य दृष्टि से यह ग्रंथ उच्चकोटि का है। 'लाल विनीत जी' ने कई वर्ष लगातार परिश्रम करके इसकी भाषा टीका लिखी थी। रात दिन भाषा टीका के कार्य में लगे रहते देखकर उनके पिता 'लाल विनीत' को व्यंग से बेटा तुलसीदास कहा करते थे। हिन्दी लेखकों का दुर्भाग्य कि कई वर्षों तक सतत परिश्रम करने पर भी एक पाई से भेंट नहीं हुई। पद्मा दरबार की उदासीनता से लाल विनीत जी को न तो कुछ पारिश्रमिक प्राप्त हुआ, न ही आज तक ग्रन्थ प्रका-शित हुआ। एक समय आपकी हालत ने बीमारी के कारण भयंकर रूप धारण कर लिया, बीमारी के साथ-साथ दस्त लगना भी शुरू हो गये। अनेक डाक्टर तथा वैद्यों का इलाज किया गया, परन्तु थोड़ा भी लाभ हाथ नहीं लगा। एक दिन उनके एक पड़ोसी मदकची ने अफीम के तीन-चार छींटे लगवा दिये, उसी क्षण से आराम दिखाई देने लगा। परिणाम स्वरूप विवश होकर उन्हें अफीम का सेवन करने के लिये बाध्य होना पड़ा। इसके पश्चात् उन्होंने अफीम खाने की आदत को छोड़ने के लिये अनेकानेक प्रयास किये, परन्तु सभी प्रयास असफलता में परिवर्तित हो गये। ज्यों ही 'लालविनीत जी' अफीम का सेवन

बंद करते, उन्हें पुनः दस्त लगने लगते। इस दुर्व्यसन में फँस जाने के कारण उन्हें निरन्तर मानसिक परिताप में जलना पड़ा।

'लाल विनीत जी' की कविता की कुछ झलकियाँ निम्नानुसार हैं। सर्व-प्रथम विनीत जी के भाव शरद जुन्हाई के चित्रण में देखिये—

छाई छिति मंडल पै चाँदनी चमक चारु प्रसरी आभा देह अलबेली सी। मुख अरविन्दन पै अवसी मलिन्दन की अलक निकाई राजे गरब गहेली सी। पीत पर ओढ़ के पराग को 'विनीत' और तारागण मोतिन की हार मन्जु मेली सी।
नवों खण्ड मंजिल अखण्डित उदोत होत, शरद सुहाई आई कामिनी नवेली सी।

दूसरे उदाहरण में 'विनीत जी' की नायिका का विरहावस्था का चित्रण देखिये जो कि अत्यन्त सराहनीय है—

आई पाती हैं नहीं, करिये कौन उपाय।
छुटकन लागी चाँदनी, अलि आँगन में आय।
अलि आँगन में आय, गुंजतें अलिदई मारे।
चातक रटकें पीउ पीउ, उर देत बिदारे।
मासो 'लालविनीत' पिया बिन पैर लखाई।
बनिके आसी खासी शरद, मीच मेरे ढिग आई॥

श्रावण कृष्ण ११, सवत् १६६३ में लाल विनीत का स्वर्गवास हो गया। उनके शोक में जो सभा की गई थी उसमें शिवसहाय जी चतुर्वेदी द्वारा पढ़ी गई 'स्वर्ग सिधारे' समस्या की पूर्ति इस प्रकार है—

बोलन में निर्भीक बड़े कहें, बात यदारथ बुद्धि सँवारे।
हाजिर देंहि जवाब तुरन्त, मनो रसना पर शारद धारे॥
काव्य-काल मर्मज्ञ सुधी सुचि, प्रीति की नीति निभावन बारे।
शोक समाज मनावत आज सु, ऐसे विनीत जु 'स्वर्ग सिधारे'॥

इसी समस्या की पूर्ति श्री ब्रजलाल जी यादव ने इस प्रकार की थी—

सृष्टि को कोटन जीवन में, कम हैं नर को तन पावन हारे।
पा भी गये तो मिले कम ऐसे, भरे तन में जिन इल्म पिटारे॥
इल्म को पाकर काव्य रचे, संत्संत सनातन है जिन सारे
ये सिगरे गुण थे जिनमें, वही लाल विनीत जी 'स्वर्ग सिधारे'॥

इस प्रकार कन्हैयालाल जी लाल विनीत देवरी क्षेत्र के मीर मंडल कवि समाज के प्रख्यात कवि थे। मीर मंडल युगीन साहित्य में लालविनीत जी का स्थान अक्षुण्ण रहेगा।

—हिन्दी विभाग, शासकीय महाविद्यालय, देवरी

आल्हखंड : कुछ प्रागिक प्रश्न

● डा० नर्मदा प्रसाद गुप्त

मामुलिया के 'आल्हखण्ड' विशेषांक और शेषांक में दो-ढाई सौ पृष्ठों की सामग्री आने के बाद आल्हखंड की चर्चा होना सहज स्वाभाविक है और इस अन्तराल में कुछ महत्त्वपूर्ण प्रश्न उभरना भी विशेषांकों की उपयोगिता का प्रामाणिक साक्ष्य है। ये सवाल कुछ खास वक्तव्यों, चर्चाओं और प्रसंगों से जुड़े हैं, पर मैं समझता हूँ कि सम्बन्धित शोधकर्ता और विद्वान अपने वैयक्तिक लगावों से ऊपर उठकर उन्हें सार्वजनीन स्तर पर स्वीकार करेंगे यह सही है कि उन्होंने जिन निर्णयों को प्राथमिकता दी है, वे हर किसी को मान्य न हों, लेकिन उनसे कुछ नये मुद्दे, नयी दिशाएं और नये विचार फूटे हैं। कुछ नयी समस्याएँ उठ खड़ी हुई हैं। अतएव यह जरूरी है कि उन निर्णयों को परखा जाय और तटस्थ दृष्टि से उनका मूल्यांकन किया जाय।

● उत्तेजना का काव्य अथवा ऊर्जा का

हिन्दी के प्रसिद्ध विद्वान डा० भगीरथ मिश्र ने महोबा के जगनिक शोध-संस्थान द्वारा आयोजित 'आल्हखंड महोत्सव' में 'मामुलिया' के आल्ह-खण्ड विशेषांक का विमोचन करते हुए कुछ निष्कर्ष लिए थे, जिनमें एक था कि आल्हखण्ड उत्तेजना का काव्य है। उत्तेजना क्षणिक होती है, उसमें अस्थिर उद्विग्नता होती है और उत्तेजना का काव्य व्यक्ति पर क्षणिक प्रभाव छोड़ता है। ठीक इसके विपरी आल्हखण्ड ने उस युग को तो प्रभावित किया ही है, उसे भी लाँघकर हर युग में प्रभाव छोड़ता हुआ सार्वकालिक हो गया है। इसी प्रकार उसमें व्यक्ति की वीरता का इतना तीव्र वेग और अबाध प्रवाह है कि वह तत्कालीन परिस्थितियों और संदर्भों को पार कर सार्वभौमिक बन गया है। उसके नायक आल्हा-ऊदल व्यक्तिकेन्द्रित वीरता की आदर्श ऊँचाई के कारण समाज की शक्ति-चेतना के स्फूर्तिकेन्द्र हो गये हैं, फलस्वरूप उसकी जीवनीशक्ति लोकजीवन की शक्ति से तादात्म्य स्थापित कर चिरंतन बन गयी है। उसकी असाधारण प्रभविष्णुता और

प्रभावक्षमता सिद्ध करती है कि वह ऊर्जा का महाकाव्य है, उत्तेजना का काव्य नहीं।

● मूल रूप कमजोर या सहजोर

डा० मिश्र ने यह भी कहा कि आल्हखण्ड का मूल रूप कमजोर था, मँजते-मँजते उसका रूप सुधर गया है, शुद्ध और प्रभावशाली हो गया है। अल्हैतों के संस्करण परिमार्जित-परिष्कृत हैं। उन्हें पूरी छूट देनी चाहिए कि वे परिमार्जित करते रहें। मैं इस कथन से सहमत नहीं हैं। आल्खण्ड का मूल रूप कमजोर होता, उसमें इतनी प्रभावक्षमता न होती, तो फिर प्रारम्भ से इतना लोकप्रिय न होता और न ही अल्हैत या जन-जन उसे अपनाते। उसकी विकासनशीलता भी लोकप्रियता पर आधारित रही है। इसलिए आल्हखण्ड सहजोर ही था और केवल इसी वजह से जगनिक-रचित यह काव्य लोककाव्य, लोक का काव्य बन सका। अगर वह प्रारम्भ में लोकप्रिय न होता, तो लोक-मुख में कैसे आया होता और उसकी इतनी दीर्घ मौखिक परम्परा कैसे बनती। अल्हैतों या आल्हागायकों ने 'आल्हा' के प्रसार-प्रचार के लिए महत्वपूर्ण योग दिया है, इसमें कोई संदेह नहीं। लेकिन अल्हैतों द्वारा गाये जाने वाले 'आल्हा' के आधार पर यह निर्णय लेना कि आल्हखण्ड का मूल रूप कमजोर था और अल्हैतों ने ही उसे परिमार्जित किया है, उचित नहीं है। इसे तो अल्हैत भी नहीं स्वीकारेंगे।

● परमालरासो का एक खण्ड या एक स्वतंत्र कृति

मिश्र जी ने आल्हखण्ड के नामकरण के आधार पर यह माना है कि आल्हखण्ड किसी विशाल ग्रंथ का एक खण्ड ही था और वह विशाल ग्रंथ परमालरासो ही रहा होगा, जिसमें तत्कालीन नरेश परमाल की श्रेष्ठता प्रतिपादित की गयी होगी। जहाँ तक नामकरण का सवाल है, लोक में 'आल्हा' या 'सैरा' प्रचलित है, आल्हखण्ड नहीं। 'आल्हखण्ड' विद्वानों और साहित्यकारों में प्रचलित है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने 'हिन्दी साहित्य का इतिहास', तेरहवाँ संस्करण, पृ० ५४ में बहुत पहले लिखा था—'जिससे अनुमान होता है कि आल्हा-सम्बन्धी ये वीरगीत जगनिक के रचे उस बड़े काव्य के एक खण्ड के अंतर्गत थे, जो चंदेलों की वीरता के वर्णन में लिखा गया होगा।' वस्तुतः समीक्षकों के मन में रासो ग्रंथों की शास्त्रीय प्रबंध-पद्धति ढुक कर बैठी हुई है, इस कारण वे अपनी दृष्टि लोककाव्यात्मक प्रबंध शैली की तरफ केन्द्रित नहीं कर पाते। आल्हखण्ड युद्ध-काव्य है, उसमें विभिन्न लड़ाइयों का खण्डशः वर्णन है और हर लड़ाई का नाम अलग-अलग है। आल्हा ने चाहे जितनी लड़ाइयाँ लड़ी हों, पर कवि ने सभी लड़ाइयों को अपनी वस्तु में ग्रहण नहीं किया।

संभवतः कुछ महत्वपूर्ण लड़ाइयों के वर्णन को कथा में लेने अथवा आल्हा के जीवनखण्ड को चित्रित करने के कारण ही इस लोक प्रबन्ध का नाम आल्हखण्ड रख दिया गया हो। इस समय यह भी नहीं कहा जा सकता कि यह नामकरण कवि द्वारा दिया गया था अथवा किसी दूसरे व्यक्ति की सूझ थी। जो भी हो, अब तो उसका नाम आल्हखंड प्रचलित हो गया है। आज यह भी बहुत स्पष्ट है कि वह जगनिक का स्वतंत्र लोकप्रबन्ध था। किसी विशालकाय ग्रंथ का एक खण्ड होता, तो पूरा ग्रंथ ही चर्चित और लोकप्रिय होता। परमालरासो का एक खण्ड होता तो असंभव-सा है, क्योंकि जगनिक चंदेल नरेश परमाल (परमर्दिदेव) की श्रेष्ठता के स्थान पर 'आल्हा' की प्रतिष्ठा स्थापित करना चाहता है। नागरी प्रचारणी सभा काशी से प्रकाशित और बाबू श्यामसुंदर दास द्वारा सम्पादित 'परमालरासो' का नामकरण स्वयं सम्पादक ने किया है, जो उचित नहीं है, क्योंकि कथा का नायकत्व आल्हा-ऊदल के हाथ में है। उसकी कई हस्तलिखित प्रतियाँ मैंने देखी हैं, सभी में कवि चंदकृत पृथराज रायसो लिखा है, पर है वह 'महोबा रासो'। 'महोबा रासो' 'पृथ्वीराजरासो' के 'महोबा समय' के उत्तर में किसी बुंदेलखण्डी कवि की शास्त्रीय प्रबन्धपद्धति की रचना है। इसलिए आल्हखंड को परमालरासो का खंड मानना उपयुक्त नहीं है।

मौखिक वीर काव्य : आशु काव्य या लोककाव्य

कैलीफोर्निया विश्वविद्यालय अमेरिका की डा० करीन शोमर आल्हखंड के स्वरूप के बारे में मुझसे चर्चा करने छतरपुर आईं। वे 'आल्हा' पर कुछ कार्य करना चाहती हैं। उनकी धारणा है कि 'आल्हा' मौखिक वीरकाव्य है। उनके अनुसार यूरोप और पश्चिमी देशों में यूगोस्लाविया के मौखिक वीरकाव्यों (Oral Epics) की खोजों से लिये गए निष्कर्षों के आधार पर यह मान्यता है कि प्रत्येक गायक को उस महाकाव्य की कथा ज्ञात है और वह आशु कवि है, इसलिए वह हर बार काव्य की रचना करता हुआ सुनाता जाता है। इसी तरह आल्हा-गायक भी हर बार 'आल्हा' की रचना करता हुआ गाता है। यह निष्कर्ष उन्होंने कन्नौज के किसी अल्हैत के साक्षात्कार से निकाला है। लेकिन उससे सहमत होना कठिन है। हर अल्हैत आल्हा की रचना नहीं करता, वरन् प्राप्त वर्णना का पाठ करता है और इस प्रपठन में वह थोड़ा सा परिवर्द्धन या परिवर्तन भी कर लेता है। इस थोड़े-से परिवर्तन में भी उनकी कुछ पूर्वनिश्चित जमने वाली उक्तियाँ शामिल होती हैं, जो श्रोताओं को प्रभावित करने में समर्थ होती हैं। अतएव आशु कवित्व तो कहने भर को रहता है एकाध अल्हैत अपवाद स्वरूप मिल भी सकता है। कुछ अल्हैतों ने

लिखित रूप में आल्हा की रचना की है, परन्तु उन्हें लिखित परम्परा में ही रखना ही उचित है। असल में आल्हखंड की मौखिक परम्परा में पाँच रूप प्रचलित हैं, जिनका विवरण मैंने मामुलिया के ८ वें अंक पृ० ६ पर दिया है। इन रूपों में महत्व का है लोकमुख में जीवित पारम्परिक आल्ह-रूप, जो अनेक वर्षों से लोकाव्य के रूप में पीढ़ी-दर-पीढ़ी से चला आया है। वही सबसे अधिक प्रामाणिक है। अल्हैतों द्वारा गाया जाने वाला रूप पारम्परिक भी हो सकता है, पर अब दुर्लभ है क्योंकि हर अल्हैत किसी गुरु के रचे आल्ह-रूप का पाठ करता है, जो उनके पास लिखित रूप में हर गुरु से शिष्य को प्राप्त हो जाता है। बहरहाल 'आल्ह' मौखिक रूप में गाया जाने वाला आशु कवित्व नहीं है। वर्षों से गाते-गाते अल्हैत को थोड़े-मोड़े परिवर्तन का अभ्यास हो जाता है, मात्र वही आशु कवित्व कहा जा सकता है। 'आल्हा' में इधर-उधर के छंद जोड़ने वाले और कुछ विशेष उक्तियों से जमावट करने वाले गायक अधिक संख्या में हैं।

कहानी

दीदी

● अनिलचन्द्र मेहता

सन् १९४२ के तूफानी दिन थे। कुमारी प्रतिभा करीब बारह अन्य आन्दोलनकर्त्ताओं के साथ खार (बम्बई) के एक फ्लेट में रहती थी। इस फ्लेट में उन्होंने एक गुप्त रेडियो स्टेशन स्थापित किया था, जिसमें स्वतन्त्रता संग्राम की खबरें देश भर में प्रसारित होती थीं। एक प्रेस भी रात-दिन चलता था जिसमें छपते थे परचे, स्वाधीनता सेनानियों को मार्गदर्शन के लिये।

प्रतिभा उम्र में सबसे छोटी थी, पर सब उसे दीदी कहते थे। यहाँ तक कि साठ वर्षीय मनोहर बाबू भी उसे 'दीदी' कह कर पुकारते थे। 'दीदी', बहुत थक गया हूँ, एक कप चाय मिलेगी क्या ? 'दीदी', ये परचे आज ही पूना चले जाना चाहिये। 'दीदी', यह खबर आज तुमको रेडियो पर पढ़ना है। 'दीदी'। रुपये बिल्कुल खत्म हो गये हैं। 'दीदी···'

प्रतिभा के पास अनवरत उसके साथी अपनी-अपनी समस्यायें लेकर आते और प्रतिभा हमेशा हँसते हुये चेहरे से, प्रसन्न मुद्रा में उनकी बातें सुनती और समस्याओं को सुलझाने का प्रयास करती।

फिर एक दिन आधी रात के वाद पुलिस ने छापा मारा। सब साथियों ने उससे बहुत अनुनय-विनय की, समझाया कि वह ऊपर के फ्लेट में किरायेदार के कमरे में चली जाए, जिससे वह गिरफ्तारी से बच जाए, पर प्रतिभा ने नहीं सुना। उसने कहा—'जब तुम लोग सब जेल जा रहे हो, तो मैं बाहर रहकर क्या करूँगी ?' सबके साथ प्रतिभा भी गिरफ्तार कर ली गई और जेल भेज दी गई। जेल में सैंकड़ों कार्यकर्ता बन्द थे। न मालूम कब किसने प्रारंभ किया, पर जेल में सभी यहाँ तक जेल स्टाफ के भी बहुत से लोग उसे 'दीदी' कह कर पुकारने लगे और प्रतिभा सब पर अपना स्नेह बरसाती रही। छोटे-बड़े सभी उसका सम्मान करते थे और उसे अपना परम आत्मीय मानते थे। जेल के मामूली कैदी भी उससे 'दीदी' कहते थे। प्रतिभा सभी की दीदी बन गई।

राजनैतिक बन्दियों की रिहाई होने पर प्रतिभा भी जेल से रिहा हुई। एक प्रश्न उसके हृदय में बार-बार उठता था और वह था—स्वराज्य का क्या मतलब है ? उसने कई नेताओं से स्वराज्य का मतलब समझाने को कहा। एक बार एक नेता ने बड़े ही भावना भरे स्वर में कहा था—'स्वराज्य का मतलब जानना चाहती हो ?' 'स्वराज्य' का मतलब होता—'स्वराज्य'। यह हिमालय, यह गंगा और जमुना, ये जंगल पहाड़ और यह अकाश—सब हमारा होगा। तन्मय हो प्रतिभा ने सुना था पर 'स्वराज्य' की तस्वीर उसे स्पष्ट नहीं हुई थी।

प्रतिभा के घर में उसकी विधवा माँ थी तथा एक छोटा भाई था। माँ एक स्कूल की प्रधानाध्यापिका थी। भाई कालेज में पढ़ता था। प्रतिभा जब '४२ के आन्दोलन में तन-मन से कूद पड़ी, तब वह बी० ए० फाइनल की छात्रा थी।

प्रतिभा अखबारों के माध्यम से काफी ख्याति प्राप्त कर चुकी थी। उससे मिलने अनेक राजनैतिक कार्यकर्त्ता आते थे। ऐसे ही एक दिन उससे मुलाकात करने उसका सहपाठी अजय आया। बहुत देर तक बातें होती रहीं, पर दोनों में 'स्वराज' शब्द पर बहुत देर तक बहस होती रही।

अजय ने कहा—स्वराज्य का आप जो अर्थ लगाती हैं वह तो ठीक है, पर जन-साधारण सुखी, उन्नतशील जीवन के लिये तैयार नहीं है।

आश्चर्य से प्रतिभा ने कहा—'क्या कहा आपने ? जन-साधारण सुखी जीवन के लिये तैयार नहीं है ?'

—हाँ, प्रतिभा देवी, गरीब जन-साधारण की कसमें खाकर बातें करना आजकल फैशन हो गया है, पर मैं पूछता हूँ कि जिन लोगों के नाम पर बड़ी-बड़ी तकरीरें की जाती हैं, वे खुद कितनी बातें समझते हैं, उनका इस नए जीवन के निर्माण में क्या योग है ?

—जन-साधारण सब बाते नहीं समझ सकती, हम उसे जिस रास्ते पर ले आएँगे उसी रास्ते पर चलेगी—प्रतिभा ने कुछ आवेश भरे स्वर में कहा किन्तु, अजय का तर्क था—'यही तो गलती है, हम लोगों को आदत हो गई है अन्धे भेड़, बकरी की तरह चलने की, नेताओं की जय बोलकर ही हम अपने कर्त्तव्यों की इतिश्री समझते हैं, पर मैं कहता हूँ कि हमारे इस महान देश की महान समस्याओं का समाधान तब तक नहीं हो सकता, जब तक खुद जन-साधारण आगे बढ़कर अपनी समस्याओं को हल करने की कोशिश न करें।'

—आपकी बात समझ में आती है, पर यह तो बतलायें कि हमें करना क्या चाहिए ?—प्रतिभा ने प्रश्न किया।

—मेरी राय में हमें गरीब जनना के बीच जाकर उनके अच्छे बेटे-बेटियों को एक ठोस राजनैतिक तथा आर्थिक प्रोग्राम से शिक्षिति करना चाहिए, जिससे वे जन-साधारण को जाग्रत कर सकें तथा स्वराज्य की सही तस्वीर उनके सामने रहे।

—तो आइये अजय बाबू हम शुरू करें इस काम को।

—मैं तो साथी ढ़ूढ़ ही रहा हूँ—अजय बोला।

कुछ और यहाँ-वहाँ की बातों के बाद अजय चला गया। अजय की बातों का प्रतिभा पर गहरा प्रभाव पड़ा। एक और नई बात थी—सब लोगों के समान उसने उसे 'दीदी' कहकर सम्बांधित नहीं किया।

प्रतिभा ने अजय के साथ जाना शुरू किया, गरीब मजदूरों की गन्दी बस्तियों में। जल्द ही प्रतिमा अपने प्यार भरे स्वभाव के कारण मजदूरों की बहुत प्रियनेत्री बन गई।

प्रतिभा को आते देख बच्चे शोर मचाने लगते —'दीदी आई, दीदी आई।' बस्ती के लोग अपनी सैकड़ों मुसीबतों की कहानी उसके सामने रखते। उन्हें सुनते-सुनते उसका हृदय दहल जाता। एक दिन उसकी आँखों के सामने एक घड़े पानी के पीछे बस्ती के लोगों में आपस ही में भीषण मार-पीट हो गई। बात कुछ भी नहीं थी। तीन सौ घर की वस्ती के बीच कारपोरेशन की तरफ से सिर्फ एक नल की व्यवस्था थी और वह भी सिर्फ दो घंटे सुबह और एक घंटा शाम को चलता था। चार बजे रात से उठकर मजदूर औरतों के बीच पानी पहले भर लेने की होड़ चलती थी और इसी होड़ में बीच-बीच में सख्त बातचीत, गाली-गलौज हो पड़ती थी। उस दिन लाठियों तक की नौबत पहुँच गयी। प्रतिभा के देखते-देखते दस बीस आदमियों के सिर फूट गये, गन्दी गालियों का तूफान बह चला, गनीमत यह हुई कि प्रतिभा और अजय ने दौड़कर बीच-बचाव कर दिया और नहीं तो किसी की जान जाती।

उस दिन घर लौटते हुए प्रतिभा ने अजय से कहा—हमारे देश के लोगों के लिये हम शुद्ध हवा और पानी तक का इन्तजाम नहीं कर पाते हैं, फिर समाजवाद या इस तरह की बड़ी-बड़ी बातें हम किस साहस से करते हैं।

● ●

अजय और प्रतिभा की मित्रता बहुत गहरी हो चुकी थी। वे 'आप' के सम्बोधन से आगे बढ़कर 'तुम' पर पहुँच चुके थे। अजय प्रतिभा के प्रति बहुत अधिक आकृष्ट हो चुका था। वह उसे सिर्फ एक राजनैतिक साथी की

ही तरह नहीं, बल्कि जीवन-साथी बनाने की कल्पना करने लगा था। प्रतिभा भी अजय के प्रति आकृष्ट थी, पर यह अपने आपको एक 'प्रेयसी' की भूमिका में सोच भी न पाती थी।

एक दिन अजय के बहुत कहने सुनने पर प्रतिभा आगरा ताजमहल देखने जाने को राजी हुई। प्रतिभा की माँ को अपनी बेटी पर अगाध विश्वास था, उन्होंने सहर्ष आगरा जाने की अनुमति दे दी।

पूर्णिमा की रात थी। चांदनी के कारण ताजमहल की शोभा को चार चांद लग चुके थे। झाऊ पेड़ की छाया में फुब्बारे के पास बैठे दोनों ताज-महल को देख रहे थे।

अजय के अन्दर का कवि मुखरित हो उठा। उसने बड़े अन्दाज से कहा—शाहजहाँ—हर युग के प्रेमियों की तरह से मैं तुम्हें बार-बार कृतज्ञता जतलाता हूँ।

—कृतज्ञता किस बात की? —प्रतिभा ने प्रश्न किया। —अमर प्रेम की, यह शानदार चिरस्थायी प्रतिमा तैयार करने के लिये।

—तुम इसे प्यार की प्रतिमा कहते हो, अजय?

—और नहीं तो क्या।

—मैं कहूँगी विलासिता और स्वेच्छाचारिता की यादगार।

—कैसे?

—जो इमारत बनायी गई हो जन-साधारण के श्रम की कमाई को लुटाकर ......।

—बस-बस प्रतिभा, कम से कम यहाँ कुछ देर के लिए राजनीति की बातों को भूल जाओ। —यह राजनीति नहीं है अजय, यह है जीवन-दर्शन —प्रतिभा ने दृढ़ता से कहा। जो भी हो, इन बातों के लिये यह जगह नहीं है। —एक कविता सुनाऊँ। —मुस्कराते हुए अजय ने कहा।

बहुत दिनों से अजय अपने प्यार का इजहार प्रतिभा से करना चाहता था, पर वह साहस कर कह नहीं पाता था। अपने प्यार की भावना को जलजाने के लिये ही वह प्रतिभा को ताजमहल लाया था कि वहाँ के वाता-वरण में प्यार की बातें करना सहज होगी। प्रस्तावनास्वरूप उसने एक बहुत ही अच्छा प्रेम गीत लिखा था। गीत का शीर्षक था—'प्रेयसी' और दरअसल यह 'प्रेयसी' थी प्रतिभा।

बड़े अन्दाज से भावना से भरपूर हो अजय ने प्यार भरा गीत सुनाया। गीत खत्म होने पर प्रतिभा पर हुई प्रतिक्रिया जानने को अजय कुछ रुका।

प्रतिभा ने सिर्फ कहा—अजय कोट के बटन बन्द कर लो, ठण्ड लग जायेगी।

—गीत पसन्द आया।

—सच कहूं।

—कहो न प्रतिभा।

—तुम्हारी लेखनी से मैं आशा करती हूं कि जन-साधारण के दुःख की वाणी, क्रान्ति की पुकार। प्यार के गीत लिखकर समय मत खराब किया करो। अजय। —घड़ों पानी गिर गया अजय के उत्साह पर। उसकी सारी हिम्मत एकदम टूट गयी।

वह गुम हो कुछ क्षण बैठा रहा, फिर धीमे स्वर में उसने कहा—चलो प्रतिभा वापिस चलें।

—कुछ देर और बैठो न।

—नही चलो अब चलें।

ठण्ड की रात थी। अजय के गले से मफलर कुछ हट गया था। प्रतिभा ने उसे ठीक करते हुए कहा—अपनी सेहत का ख्याल रखा करो अजय।

—क्रांतिकारी को इतना सुकुमार नही होना चाहिए। —अजय के स्वर में व्यंग फूट पड़ा।

रास्ते भर अजय गुम-सुम रहा। प्रतिभा ने बार-बार बातें करने की कोशिश की,पर अजय ने हां और न में जवाब देकर टाल दिया। प्रतिभा को अजय का व्यवहार कुछ अजीब सा-लगा। होटल में आकर अजय ने बहुत थोड़ा खाया और नींद आ रही है, कहकर अपने कमरे में चला गया।

प्रतिभा अजय के बदले हुए व्यवहार से आश्चर्यचकित रह गयी। उसे समझ में नहीं आ रहा था कि आखिर उससे क्या गलती हो गयी है।

अजय ने अपने कमरे में आकर किवाड़ बन्द कर लिये और किसी तरह कपड़े बदलकर बिस्तर पर लेट गया। रात भर उसे बिल्कुल नींद नहीं आई और वह करवटें बदलता रहा। एक ही विचार उसके हृदय में बार-बार उठता था—प्रतिभा, बड़ी बहिन बन सकती है, दादी का स्नेह दे सकती है पर प्रेयसी नही हो सकती। पत्नी का प्यार उससे नहीं मिल सकता। आज तक उसने प्रतिभा को जीवन साथी बनाकर जो रंगीन स्वप्नों के जाल बुने थे, वह इन्द्रधनुष के रंग जैसे ही एक क्षण में विलीन हो गए।

आगरा से बम्बई लौटकर अजय जब तीन दिन तक प्रतिभा से मिलने नहीं आया, तो प्रतिभा बहुत बेचैन हो उठी। अजय के नित्य प्रतिदिन के साथ

से वह इतनी अभ्यस्त हो उठी थी कि अजय के न आने से वह बहुत ही एकाकीपन अनुभव करने लगी।

चार दिन और बीत गए। जब प्रतिभा घबड़ा गई। उसने अपने अन्य राजनैतिक साथियों से अजय के बारे में पूछना शुरू किया, पर कोई भी यह नहीं बतला सका कि अजय कहां गया है। प्रतिभा को न मालूम क्यों ऐसा लगने लगा कि अजय उससे नाराज होकर चला गया है।

न चाहते हुए भी वह रात-दिन अजय के बारे में सोचने लगी। अजय का मुस्कराता हुआ चेहरा उसकी आंखों के सामने रात-दिन झूमता रहा। वह कभी-कभी अपने ही पर खीज उठती—यह मुझे हो क्या गया है? अजय के बारे में वह जबरन सोचना बन्द करने की कोशिश करती पर अनजाने में ही वह अपने आपको अजय के बारे में सोचती हुई पाती।

मजदूर बस्तियों में जाना उसका बन्द हो गया था। अकेले, बिना अजय के जाने में, न जाने क्यों उसे बड़ा अटपटा-सा लगता था? एक बात और थी जो उसे बड़ी अजीब-सी लगती थी। वह स्वयं को अजय द्वारा आगरे में सुनाये प्रेम-गीत की पंक्तियां गुनगुनाती पाती।

'तो क्या मुझे अजय से प्यार हो गया?' अपने आपसे ही वह प्रश्न करती। और 'अजय से प्यार' के विचार से ही वह शर्म से लाल हो उठती। आतुर हो अजय के आने की वह बाट जोहती। उसने तय किया था कि अजय के आने पर वह उसके आगरे में सुनाये प्रेम-गीत की बहुत-बहुत तारीफ़ करेगी और कहेगी—अजय जो गीत तुमने ताजमहल के सामने फुव्वारे के फर्श पर बैठकर सुनाया था, उसे फिर से सुनाओ। मैं आतुर हूं, उन अमृत भरे शब्दों को सुनने को।'

प्रतिभा के कपोल लाल हो उठते, हृदय की धड़कन बढ़ जाती। सुबह से शाम तक वह अजय के लिये रास्ते पर आंखें गड़ाये बैठी रहती। घर से बाहर निकलना प्रायः उसका बन्द हो गया था। प्रतिभा की मां की आंखों से प्रतिभा की बदली हुई अवस्था छिपी नहीं। एक दिन उन्होंने पूछ ही डाला—बेटी तुझे हो क्या गया है? रात-दिन चुपचाप बैठी-बैठी क्या सोचती रहती हो?

—कुछ तो नहीं मां, थक गई हूं, इसलिये कहीं बाहर नहीं जाती। मां ने और कुछ नहीं कहा, पर वे प्रतिभा के लिये चिन्तित हो उठीं। पन्द्रह दिन बीत गए फिर भी अजय नहीं आया। अब प्रतिभा से न रहा गया। वह अजय के फ़्लेट पर गई। वहां जाकर उसने पूछताछ की तो पता लगा कि आगरे से लौटने के दूसरे ही दिन अजय कानपुर अपने घर चला गया है।

प्रतिभा के पास अजय के कानपुर के घर का पता था। घर लौटकर उसने इस तरह चुपचाप बिना कहे कले जाने के लिये अजय को उलाहना भरा पत्र लिखा और कुशल समाचार सूचित करने को लिखा। पत्र में यह भी लिखा कि अजय बम्बई कब लौट रहे हो, तुम्हारे बिना सब काम बन्द है, जल्दी बम्बई लौट आओ।

बेचैनी से प्रतिभा पत्र के उत्तर की बाट जोहती रही, पर सात दिन बीत गए, कोई उत्तर नहीं आया। दूसरा पत्र लिखा प्रतिभा ने, फिर तीसरा पत्र पर कोई उत्तर नहीं आया।

अजय के बिना उसका जीवन इतना सूना हो जायेगा, उसने यह स्वप्न में भी न सोचा था। दो-माह बीत गए। शाम का समय था। मां और भाई सिनेमा शो देखने गये थे। उन्होंने प्रतिभा से बहुत कहा था साथ चलने को पर प्रतिभा राजी नहीं हुई थी। वह चुपचाप अकेले घर में एक आराम कुर्सी पर बैठी हुई थी। एकाएक उसकी नजर दूर से आते हुए एक युवक पर पड़ी। चाल बिल्कुल पहचानी मालूम होती थी—कौन ? अरे अजय।

अजय नजदीक आ चुका था। प्रतीक्षा से भरी प्रतिभा की आँखें गलती नहीं कर सकती थीं। उसका हृदय नाच उठा। आनन्द से वह विभोर हो उठी। उसका 'अजय' आ गया, प्रतीक्षा की घड़ी खत्म हो गयी। उसकी प्रबल इच्छा होने लगी कि दौड़कर वह जाये और अजय के हृदय से लगकर खूब रोये—खूब रोये और कहे—'इतनी बड़ी सजा क्यों दी तुमने।'

अजय ने चुपचाप कमरे के अन्दर प्रवेश किया। कुर्सी से उठते हुए प्रतिभा ने कहा—अजय तुम आ गए।

—हां।

—कहाँ थे इतने दिन ?

—मैं कल रात शादी करके लौटा हूँ।

—शादी करके ?

—हां दीदी।

'दीदी'—प्रतिभा को ऐसा लगा मानों किसी ने उसके हृदय को भाले से छेद दिया हो। आँसुओं की दो बड़ी-बड़ी मोती जैसी बूंदें उसकी आँखों से टपक पड़ीं।

एडवोकेट, सागर, म० प्र०

अथाई की बातें

घर-घर कौ महाभारत

● जितेन्द्रसिंह

आज जब हम अथाई पै पौंचे, तौ अथाई सूनी-सूनी सी लगी है। उतै अकेले हलकाईं कक्का बैंठे हुक्का पी रये ते। हमैं देखकैं कक्का बोले, 'आव... आव भैया, काँ हिराने रये इत्ते दिना ? बिलात दिना में आये ई कोद। आज तौ कोउ जुरोई नइयाँ अथई अथाई पै। ब्याव-बरातत के मारें मत्र कऊँ न कऊँ लगे हुइयें।'

हमनैं कई—'अब का बताइये कक्का, हमें खुदई ब्याव-बरातन के मारें नाकन दम है। घासलेट खा-खा कैं औ आँगन-ताँगन कौ पानी पिये से जुखाम हो गओ औ खाँसी सोउ आउन लगी।'

कक्का बोले—'अब जो तौ होतइ है भैया। पैलाँ के जमाने में सुद्ध घी रसुइया दई जात ती। अकेले अब काँ धरो सुद्ध घी...और सुनाओ कैसी रई रम्मू के लरका की बरात ?'

'ठीकइ रई कक्का, अब का कइये। मसूकैं आधी रात की बेरा तौ टीका भओ, तब कऊँ-जाकें मुर्गा बोले भुन्सरा कै पाँत भई, बा भी जब बिलात तूं-तं मैं भई। इनकी कोद सें दो-ढाई सौ आदमी बरात में पौंच गए ते, सो खवावे-पिवावे में बिटिया बाले खाँ बड़ी इल्लत परी। फिर लैंबे-दैंबे में सोउ कुल्ल झिक-झिक भई। अपुन जा समजो कै रामइं-राम कये पार परो। काए सें पन्द्रा हजार तौ इननै पैलऊ-सें गिनवा कै धर लए ते, फिर दो हजार टीका में लए सो बिटिया वालो बेमुरौबत हो गओ।''

हमाई जा बानकै हलकईं कक्का ने पूँछी—'क़ैसो बेमुरौबत।' सो हमनैं पूर किस्सा बताई, कै कलेबा में रम्मू भैया को लरका फटफटिया माँगन लगो, सो बिटिया वालन नैं भौत हाँत-पाँव-जोरे बिन्ती करी कै हम तुमै दैवे लाइक नइयाँ। अकेले ऊ लरका नें एक ना सुनी, सो आखिर में बिटिया के एक चाच जात भाई नैं कै दई कै, 'लला जे ग्यारा रुपइया हम अपनी कोद सें और धरे दै रए, अब खाने होय, तौ मान मरजादा सें खा लेव, नईं तौ उठ कैं

जनवासे जाय। अब हम अपुन को कछू कर्जा नईं चाहत आंय। खासे गवा-अठारा हजार खरे-खरे गिनवा कैं पैलऊ धर लए, अब हम इत्ते बड़े आदमी नइयां कैं तेरा-चउदा हजार और खर्चा कर सकैं।' इत्ती बात सुनकैं मोड़ा मसकऊ खा-पी कैं जनवासे आडत रओ।'

अब हलकाई कक्का नै फिर कई—'काए भैया! रिस्तेदारी करकें मन फिकाई करी, तौ का बात रै गई? हम तौ सौ बातन की एक जा जानत हैं कै कोऊ के दए धन नईं जुरत आय, औ फिर तुलसी बब्बा सोउ कै गए 'तुलसी या न लख परै धन घन आवन जान।' भैया। हमें तौ पांडे जू के लरका की बरात नईं बिसरत आय। उनकौ मोड़ा ऐन पढ़ो-लिखो देखत सुनत को साजो औ अच्छी सरकारू नौकरी सोउ करत। ऊके ब्याव के लानें कइयक बिटिया वाले तीस-चालीस हजार नगद रुपइया दैबे खाँ तैयार फिरत ते। अकेले पांडे जू को कैत्रो जोट हतो कै हमैं एक पइसा नईं चानें, बस बिटिया पढ़ी-लिखी, सुन्दर औ सुसील होय! सो जब ऊ मोड़ा को ब्याव पांड़े जू नैं करो सासउ एक पइसा कौ दायजो नईं लओ। बरात नखलउ गई ती, इतईं से एक बस लुबा कै गए ते, जीमें चालिस-पैंतालिस बराती गए ते। खूब आराम की बरात रई औ बिटियावाले नें स्वागत-सत्कार में कौनउकोर कसर नईं राखी। चौबिस घण्टा कौ ब्याव रओ। सबसें साजी बात तौ जा हती कै पांडे जू नैं ताम-झाम, गोला-बारूद और नाच-गाना में एक टका बरबाद नईं करो। अकेले सब बरातियन खां ओई बस में बैठार कैं लखनउ की देखबे लाइक सब जगां घुमा दईं। बिदा की बेरा लौं जनातियन औ बरातियन कौ मन ऐमो सिल गओ तो जैसें एकइ पुरा के होंय। सो बा बरात हमैं सबसें साजी जंची। ई जमाने के हिसाब से ऐसे ब्याव कमई देखबे-सुनबे में आउत हैं।'

हमने कई—'हाँ कक्का, ऐसें ब्याव सबके होन लगैं, तौ काए खाँ जा चें-चें, पें-पें होय।'

सो कक्का बोले—'अका कॉनें भैया, फिर तौ धरती सुरग हो जाय, घर-घर कौ महाभारत बन्द हो गाय औ दायजे के बिना बहुअन बिटिया के मरबे की खबरैं सोऊ न मिलैं। फिर बिटिया को बाप मोड़ी खाँ बोझ और खुद खाँ अभागी न समजै।'

कांति-निकेतन, पोस्ट-ग्योंड़ी, जि० हमीरपुर (उ० प्र०)

साहित्यकारों के कल्पवृक्ष का साहित्यिक श्राद्ध

ओरछेश-स्मृति-ग्रंथ, सम्पादक—श्री बनारसीदास चतुर्वेदी, सहायक—श्री यशपाल जैन, पृष्ठ १५५
सौजन्य प्रकाशन—पं० बनारसीदास चतुर्वेदी, फीरोजाबाद (आगरा) उ० प्र०,
मूल्य दस रुपये।

ओरछेश महाराज वीरसिंह जू देव का स्वर्गवास अक्टूबर, १९५६ के प्रथम सप्ताह में किसी दिन हुआ था, तबसे लगभग २३ वर्ष बाद सन् १९७९ में पं० श्री बनारसीदास चतुर्वेदी उस महत् कार्य को सम्पादित कर सके जो वे महाराज साहब के जीवन-काल में अथक श्रम और प्रयास के बावजूद भी न कर सके थे क्योंकि स्वयं चतुर्वेदी जी के अनुसार "महाराज साहब ने अपने जीवनकाल में अभिनन्दन ग्रंथ लेना सर्वथा अस्वीकार कर दिया था और बड़ी ही मुश्किल से वे एक हस्तलिखित ग्रंथ लेने को तैयार हुए थे, उसी ग्रंथ के कुछ लेख तथा कुछ नवीन लेख भी शामिल कर दिए गए हैं। महाराज साहब ने स्वय मुझसे स्पष्टतया कह दिया था—'चौबेजी, आप मेरे ऋणी नहीं, बुन्देलखण्ड के ऋणी हैं। मैं तो मात्र कोषाध्यक्ष हूँ।' तदनुसार यह ग्रंथ बुन्देलखण्ड को ही समर्पित किया गया है।"

कैसी विडम्बना है हम बुन्देलखण्डवासियों की भी कि पं० चतुर्वेदी जी जैसे बृजवासी कुछ वर्ष रहकर ही बुन्देलखण्ड का ऋण चुकाने के लिए उतावले हो उठते हैं, पर हम बुन्देलखण्डियों के लिए इन दृष्टांतों को देख-सुनकर भी जूं नहीं रेंगती? राष्ट्रीय कविद्वय गुप्त बंधुओं, बृन्दावनलाल वर्मा, घासीराम व्यास, घनश्यामदास पाण्डेय, नरोत्तम पाण्डेय, दद्दा ध्यानचन्द, गंगाधर व्यास आदि विभूतियों की स्मृति-रक्षा हेतु बुन्देलखण्डियों ने भला क्या किया अब तक? स्वर्गीय गुप्तजी का अभिनंदन कलकत्ता-वासी तो कर सकते हैं, पर हम बुन्देलखण्डी हैं कि आज भी उनकी विधवा आदरणीय जिया को अपनी समस्याओं के निराकरण हेतु अनशन करना पड़ता है।

श्रद्धेय दादाजी ने 'ओरछेश-स्मृति-ग्रंथ' अपने व्यय पर छपाकर ओरछेश के प्रति सच्चा साहित्यिक श्राद्ध अर्पित किया है। ग्रंथ में 'चार शब्द' और 'भूमिका' के अतिरिक्त ३० शोध निबंधों, ओरछेश के तथा उनको लिखे गए लगभग ४५ पत्रों तथा एक कविता में संजोयी एक सौ पचपन पृष्ठीय सामग्री

बुन्देलखण्ड और ओरछेश स्व० वीरसिंह जू देव के व्यक्तित्व तथा कृतित्त्व पर समग्ररूप से प्रकाश डालने में तो समर्थ नहीं कही जा सकती, किन्तु ओरछेश के बहुमुखी व्यक्तित्व को विविध दृष्टिकोणों से प्रस्तुत करने में अवश्य समर्थ है। ओरछेश श्री वीरसिंह जू देव तो एक साथ राजा, राजनेता-कुशल प्रशासक, श्रेष्ठ साहित्यकार, महामानव, कलाकार, दीनों के हितचिंतक न जाने क्या क्या थे ! उनके जीवन और कृतित्त्व पर तो अलग से ही एक शोध अपेक्षित है, जो यथा संभव अति शीघ्र होना ही चाहिए। पर समस्या है इसे करे कौन ? बुन्देलखण्ड विश्वविद्यालय, झाँसी द्वारा उनके लिए एक शोध पीठ की स्थापना भी एक ऐसा आयोजन हो सकता है। नातीराजा श्री मधुकर शाह क्या इस पहल को आगे बढ़ाने में क्रियाशील होंगे ?

इस ग्रंथ में स्वीय वीरसिंह जू देव के साहित्यिक एवं विविध क्षेत्रीय महत्त्वपूर्ण योगदानयुक्त व्यक्तित्व पर सर्वश्री वियोगी हरि, बनारसीदास चतुर्वेदी, श्रीनारायण चतुर्वेदी, यशपाल जैन; स्व० वृन्दावनलाल वर्मा, मुंशी अजमेरी जी, शोभाचंद्र जोशी, गुप्त जी, कृष्णानन्द गुप्त, जगदीश प्रसाद चतुर्वेदी, रामचारण ह्यारण 'मित्र' रोमगोपाल चतुर्वेदी, देवेन्द्र सत्यार्थी, कालिदास कपूर आदि जैसे प्रभृत्ति मनीषी विद्वानों द्वारा प्रकाश डाला गया है। स्व० श्री त्रिभुवन कुमार पाण्डेय ने उनके खिलाड़ी रूप का बड़ा ही मार्मिक वर्णन इन पंक्तियों में किया है—'खेल का ऐसा शौकीन कम से कम मैंने आज तो नहीं देखा।···कभी मई के महीने में सूरज आग उगलता था, कभी वारिस की फुहारें होतीं थीं, कभी चिल्ले का जाड़ा पड़ता, लेकिन उन्हें खेल से मुख मोड़ते कभी नहीं देखा।'

इस प्रकार मात्र १५५ पृष्ठों में ओरछेश के बहुमुखी व्यक्तित्व को 'गागर में सागर' की भाँति प्रस्तुत करने में श्रद्धेय दादाजी ही समर्थ हो सकते थे, सो हुए भी। श्री ओरछेश जी का बुन्देली गद्य-लेखन कितना प्रवाह युक्त, सरस और प्रभावशाली था ? देखिए—'आज मैं अपने कागदन खों ठीक सें लगारओ तो कै मोय अचानक आपको ५ अप्रैल को पत्र मिलो, तब होस भयो कै राम, राम इतने दिना हो गये, जा पाती बिना जुवाव के डरी रई। भौत दिनन की बात है, आपऊ खों ऊपाती की खबर बिसर गई हुहै, सो कलमवार जवाब लिखत हों।'

अपने अंग्रेजी में लिखे पत्र का यह उत्तर पाकर पं० चतुर्वेदी जी ने बड़ी लज्जा का अनुभव किया था। सचमुच यह ग्रंथ अति प्रेरक और पठनीय है।

वीरेन्द्र शर्मा 'कौशिक'
हिन्दी प्रवक्ता, छतरपुर (म० प्र०)

प्रचार के पैम्पलेट से लेकर लेखन की ईमानदारी तक

पुस्तक—रचना धर्मिता और समकालीन साहित्य,
लेखक—डा० परमलाल गुप्त,
प्रकाशक—राज्यश्री प्रकाशन, मथुरा, मूल्य रु० २०=००

सृजन की पीड़ा जब अनुभवों की परिपक्वता और संवेदनाओं की गहनता
का आधार पा लेती है, तब अभिव्यक्ति की सहजता स्पृहणीय हो उठती है।
डा० परमलाल गुप्त की नव-प्रकाशित पुस्तक 'रचनार्धमिता और समकालीन
साहित्य' इसका सहजोपलब्ध उदाहरण है। हिन्दी-साहित्य की लगभग सभी
विधाओं यथा—कविता, कहानी, उपन्यास पर सफलतापूर्वक अपनी कलम
माँजने के बाद डा० गुप्त समकालीन समीक्षकों में भी अपना स्थान बन चुके
हैं। यह बात अलग है कि वे अभी तक गुटीय-प्रतिबद्धता से अनबँधे हैं।
पुस्तक के बाईस निबन्धों में आधुनिक हिन्दी-साहित्य के बहुचर्चित और ज्वलंत
पक्षों पर अत्यन्त ही सरल, सहज और बोधगम्य भापा-शैली में गहन गंभीर
विषयों को हृदयंगम कराने का प्रयास किया गया है। 'साहित्य और आत्मिकता'
में व्यक्ति-परक और वस्तु-परक चेतनाभिव्यक्ति के कृत्रिम भेदभाव को
नकारते हुए डा० गुप्त की मान्यता है कि साहित्य को आत्मिकता से अलग
नहीं किया जा सकता। 'साहित्य और राजनीति' तथा 'साहित्यकार की प्रति-
बद्धता' नामक निबंधों में साहित्य को साहित्य के रूप में ही स्वीकार, अंगी-
कार और जीवन से एकाकार होने का आग्रह करते हुए डा० गुप्त का मानना
है कि "राजनीतिक प्रतिबद्धता साहित्य को प्रचार का पम्फलेट बना देती
है।" प्रगतिशीलता के नामपर अपनी सवार्थ-सिद्धि में आलिप्त खेमेबाजों की
छद्म-सांस्कारिका और ओढ़ी-हुई सौजन्यता की बखिया उधेड़ते हुए वे लिखते
हैं—"ये व्यवस्था और सरकार की खिलाफत करते हैं परन्तु अपने लाभ का
अवसर आते ही उसी में घुस जाते हैं······ये तथाकथित प्रगतिशील कथाकार
वास्तव में एक राजनीतिक शक्ति के भोंपू हैं।"

अभिव्यक्ति की स्वतन्त्रता सोद्देश्य ही हो सकती है और उसका लक्ष्य

होना चाहिए सामाजिक न्याय तथा सत्य का साक्षात्कार। यदि साहित्यकार में खतरे उठाने का साहस नहीं है, तो वह सच और झूठ में विवेक करने की क्षमता खो बैठता है। 'अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता' में डा० गुप्त इसी तथ्य की ओर संकेत करते हैं। वादों के विवादों में साहित्य के नेक इरादों को बदनी-यती से बदनाम करने वालों से डा० गुप्त बहुत ही खफा हैं और ऐसे रचना-कार उनकी दृष्टि में राजनीतिबाजों के नक्शे-कदम पर चलकर "साहित्य के साथ एक प्रकार का बलात्कार" ही कर रहे हैं। वे लिखते हैं—"मेरे कहने का आशय यह है कि साहित्य में जीवन-दर्शन तो होगा ही और वह किसी वाद के रूप में ही हो सकता है, परन्तु वह जीवनानुभूति का अंग बनकर ही आना चाहिए।"

कविता को साहित्य की सर्वाधिक प्रभावशाली विधा निरूपित करते हुए वर्तमान समय में उसकी सार्थकता का शक्तिशाली प्रतिपादन किया गया है। आधुनिक पूंजीवादी व्यवस्था से उत्पन्न विरूपताओं ने मनुष्य के चरित्र को विकृत कर दिया है फिर भी उसकी "मनुष्यता मरी नहीं है।" 'कविता और उसकी वर्तमान सार्थकता' में इसी सत्य की ओर संकेत किया गया है। नव-गीत की विशेषताओं का सांगोपांग विवेचन करते हुए डा० गुप्त उसे गीति-काव्य के विकास का नया चरण और नयी भंगिमा मानते हैं।।

कहानी और लघुकथाओं पर लिखे तीन निबन्धों में उन्होंने कहानी के आधारभूत तत्वों और मूलभूत आवश्यकताओं का प्रतिपादन करते हुए उसे 'भावनात्मक आविष्टता' और 'बौद्धिक चुटकुले बाजी' दोनों से बचाने का प्रबल आग्रह किया है। उनकी मान्यता है कि "जीवन के प्रति सही एप्रोच ही कहानी को प्राणवान एवं सार्थक बना सकता है।" आज की कहानी के गिरते स्तर का रूप उसकी लिजलिजी मांसलता में देखा जा सकता है जो जनवादी मुखौटे और नये सौंदर्यबोध के चोले में आवृत करके प्रस्तुत की जा रही है। इस प्रवृत्ति को डा० गुप्त "सांस्कारिक दरिद्रता" से अभिहित करते हैं (कहानी की जनवादी भूमिका)।

लघुकथा और चुटकुले का भेद स्पष्ट करते हुए उनका विचार है कि चुट-कुला जुगनूं की चमक के सदृश्य है जो क्षणिक रूप से चमत्कृत अवश्य करती है, लेकिन स्थायी नहीं होती, जबकि लघुकथा अपनी संवेदनात्मक अभिव्यक्ति के कारण पूरनमासी की ज्योत्स्ना के समान है, जो शीतल है, सुखद है और अपेक्षाकृत स्थायी है।

आधुनिक उपन्यासों में समकालीन यथार्थ के रियलिस्टिक-प्रक्षेपण की महती आवश्यकता से इनकार नहीं किया जा सकता, किन्तु यह रियलिज्म

मात्र भावात्मक और शैलिक ही हो और उसमें रचनात्मक ईमानदारी तथा अनुभूति के व्यापक स्वरूप का साक्षात्कार न हो, तो ऐसी रचना को न तो "स्थायी महत्व" ही मिल सकता है और न वह "समय की कसौटी पर खरी ही उतर सकती है।" (हिन्दी के अधुनातन उपन्यास और समकालीन यथार्थ)

आलोचना के सर्व-सम्मत और सर्व-स्वीकृत मानदण्ड भले ही निर्धारित नहीं किये जा सकते हों तथा न जरिये के अलगाव को अस्वीकार नहीं ही किये जाने के बावजूद भी कृति की आत्मा के सौंदर्य और बाह्य रूपाकार के स्ट्रक्चरल डायमेन्शन्स तो आलोचना में उद्घाटित होने ही चाहिए। वैय-क्तिक पूर्वाग्रहों की कलम द्वारा रागद्वेष की रोशनाई लिखी गई आलोचना को डा० गुप्त आलोचना ही नहीं मानते। आलोचक भी एक रचनाकार है, कलाकार है; उसकी लिखी आलोचना उसके व्यक्तित्व की परिचायक है। अतः "गुट बाजी, फिकरेबाजी और निर्णयात्मक उक्तियों" से उसे बचना चाहिए।

डा० परमलाल गुप्त की यह कृति संभवतः उनके द्वारा समय-समय पर लिखे गए निबंधों का संकलन है, जिसे एक तरतीब देकर छात्रोपयोगी बना दिया गया है। सभी निबंधों को एक साथ पढ़ने पर एकसूत्रता और एकलया-त्मकता का अभाव इस निष्कर्ष (या अनुमान) को मानने को विवश कर देता है। हाँ, इतना अवश्य है कि अभिव्यक्ति की सरलता, विचारों की प्रवहमानता और कथ्य की पकड़ तथा लिखने की ईमानदारी कृति को सहज-पठनीय बना दिया है। 'कैनवस' की विराटता कलेवर के विस्तार की माँग करती है, लेकिन कुछ निबंधों की संक्षिप्तता रसास्वादन में बाधा डालती है। कहीं-कहीं प्रेस की भूलों से भी 'दाँतों के नीचे कंकर' का अहसास होने लगता है। ऐसा लगता है डा० गुप्त किसी बृहद् शास्त्रीय ग्रन्थ की रचना की कल्पना संजोये थे, लेकिन किसी कारण वैचारिक-मन्थन का लघु-संस्करण ही प्रस्तुत कर सके।

—राजेश भारद्वाज

मिथ, पुराण और लोक भाव की त्रिवेणी

गंगा गुण मंजरी पं० कालीदुत्त नागर 'काली कवि' द्वारा रचित एक प्राचीन कृति है। पुस्तक के प्रारम्भ में प्रकाशकीय वक्तव्य कवि परिचय तथा सम्पादक श्री मिथिलेश कुमार द्विवेदी की एक टिप्पणी है। यह मुक्तक काव्य होते हुये भी पद्माकर की 'गंगा लहरी' की परम्परा में एक परिपूर्ण कृति है। इसमें अट्ठावन कवित्त और दो दोहे हैं।

रीति काव्य-परम्परा से प्रभावित हुये भी इसमें गंगा के प्रति सहज श्रद्धा-युक्त प्रेम की भावनाओं की जैसी चमत्कारिक और व्यंजनापूर्ण अभिव्यक्ति हुई है, वह दर्शनीय है। इसमें लोकधर्मिता का स्पर्श भी महत्वपूर्ण है। अतः इसमें काव्य के चमत्कार के साथ लोकगीतों की तरलता एवं संगीतात्मकता का प्रवाह पाठकों के हृदय के अनुरंजन में विशेष योग देता है। भाषा की आनुप्रासिकता तो सम्पूर्ण काव्य में दृष्टिगोचर होती है, यथा—

छारा छार छींटन के छातिन छराके लेत,
छोरन छरा के लेत पवन फरारा के।
'काली कवि' झमक झला की झौर भूमर में,
खिलखिलात खेलत समूह सुर दारा के।
शंकर जवान तें छटान छू छपाकर की,
उचट चटान पै पौ ते पुज्ज परा के।
तारा से सिसकत रारा लै हजारा,
फुलझारा बाँध छूटत फुहारा गंगधारा के।३।

इस उदाहरण में छ, झ, ख, ट, प, र आदि बर्षों की अनेक बार आवृत्ति का आनुप्रासिक सौंदर्य तो है ही, इसमें लौकिक बुन्देली शब्दों की योजना से सहज क्रियात्मक प्रवाह आ गया है। 'छराके लेत', 'झमक झला की झौर', 'उचट चटान मैं', 'सिक्कत', 'फुलझारा बाँध घूटत' आदि लौकिक चित्रात्मक विशेषण अर्थध्वनन के साथ ऊपर से गिरती हुई नदी का ध्वनि एवं रूप चित्र उपस्थित कर देते हैं। अतः सम्पादक का कथन 'कवि की यह विशिष्ट कृति मिथ, पुराण तथा लोकभाव की त्रिवेणी है', पूर्णतया युक्तियुक्त है।

यह काव्य-कला की दृष्टि से एक महत्त्वपूर्ण कृति तो है ही, इसका ऐति-
हासिक महत्व भी है। बुंदेलखंड में अनेक ऐसी कवि प्रतिभायें हुई है, जिनका
प्रकाशन न होने से समुचित मूल्यांकन नहीं हो सका। श्री अरुण कुमार जी ने
काली कवि को इस कृति का प्रकाशन करके बड़ा स्तुत्य कार्य किया है। आशा
है इसका बुंदेलखंड में ही नहीं, बल्कि सम्पूर्ण हिन्दी काव्य-जगत में स्वागत
होगा।

—डा० परमलाल गुप्त, सतना

पुस्तक—गङ्गा गुण मंजरी (काव्य), कवि—पं० काली दत्त नागर
प्रकाशक—अरुण कुमार 'अरुण', उरई। मूल्य=११.०० रुपये।

कल्पना के तिलस्मी महल से दूर

श्री राजेन्द्र श्रीवास्तव का यह प्रथम कहानी संग्रह है, जिसमें छोटी-छोटी
कुल सात कहानियाँ हैं। यद्यपि इन कहानियों का साहित्यिक महत्व अत्यंत
गौण है, तथापि समाज-सुधार की शिक्षा की दृष्टि से साधारण पाठकों के लिये
काफी उपादेय हैं। इन कहानियों में यथार्थ की तीक्ष्णता, कटुता, नग्नता,
अश्लीलता आदि नहीं है। कल्पना के तिलस्मी महल से भी ये दूर हैं। ये
सीधी-सादी आदिर्शवादी काहानियाँ हैं। इनकी बुनावट भी कथ्य के अनुरूप हैं।
ये उस तरह की कहानियाँ हैं जैसी अक्सर 'सरिता', 'मुक्ता' आदि में छपती
रहती हैं। न तो ये व्यक्ति के अन्दर की परतें खोलती हैं और न सामाजिक
परिवेश की यथार्थता उजागर करती हैं। इन कहानियों में मानवीय संवेदना
अवश्य दृष्टव्य है। लेखक ने इनके माध्यम से साम्प्रदायिक सद्भाव, अन्तर्जातीय
विवाह, गाँव की सेवा, देश-भक्ति और मानवीय प्रेम के आदर्शों की स्थापना
की है। लेखक वर्तमान स्थिति से दुखी है और उसे एक सम्बल की तलाश है।
ये कहानियाँ इसी प्रयास का प्रतिफल हैं। सामान्य पाठक अवश्य इनसे प्रेरणा
प्राप्त करेगा, यही इस कहानी-संग्रह की सफलता है।

डा० परमलाल गुप्त, सतना

पुस्तक—गाँव की बेटी (कहानी संग्रह) लेखक श्री राजेन्द्र श्रीवास्तव
प्रकाशक—मदन महल जनरल स्टोर्स, जबलपुर। मूल्य=५.०० रुपये

भारतीय संस्कारों और अध्यात्म की जीवनी

पुस्तक—स्वामीपूर्णानन्द : व्यक्तित्व एवं दर्शन,
सम्पादक—डॉ० परमलाल गुप्त; प्रकाशक—स्वामी पूर्णानन्द अभिनन्दन समिति, सतना (म० प्र०)।

बंधुवर डा० परमलाल गुप्त द्वारा सम्पादित यह एक ऐसा अभिनन्दन ग्रंथ है, जिसमें सम्पादक ने देश के एक आध्यात्मिक पंडित, साधक, ज्योतिर्विद, आयुर्वेदशास्त्री एवं तांत्रिक स्वामी पूर्णानन्द जी के व्यक्तित्व और कृतित्व को दो खण्डों में २७ निबन्धों, संस्मरणों तथा साक्षात्कारों के अन्तर्गत समेटने की कोशिश की है। स्वामी जी आपात्काल में एक ऐसे तांत्रिक के रूप में भी कुख्यात हो गये थे जिसे मीसा के अन्तर्गत सतना, रीवा और दिल्ली की जेलों की हवा भी खानी पड़ी थी, क्योंकि श्री हेमवती नन्दन बहुगुणा के हितार्थ उन्होंने श्रीमती इन्दिरा गांधी को अपदस्थ कराने हेतु तांत्रिक यज्ञ कराया था।

पुस्तक के प्रथम खंड में स्वामी की जीवनी और उनके चमत्कारिक व्यक्तित्व के विषय में पन्द्रह आलेख हैं, जिनमें उनके विविध चत्मकारों का वर्णन लेखकों ने किया है। दूसरे खंड में स्वयं स्वामी जी द्वारा लिखित ५ हिन्दी तथा ४ अंग्रेजी के निबन्ध हैं, जो विविध पत्र-पत्रिकाओं में छपे बताये गए हैं। तीन साक्षात्कार स्वयं सम्पादक ने समय-समय पर स्वामी जी से लिए थे, जिनमें स्वामी जी ने सृष्टि का स्वरूप, मुक्ति का मार्ग तथा मनुष्य का प्रारब्ध आदि विषयों की आध्यात्मिक तथा भौतिक व्याख्या की है।

स्वामी जी के ८८ वें जन्मदिवस पर उनके अभिनन्दनार्थ प्रकाशित यह ग्रन्थ इसलिए पठनीय है कि पाश्चात्य संस्कृति-सभ्यता के छद्म आकर्षण में आकण्ठ डूबा वर्तमान भारतीय जनमानस अपने देश के एक ऐसे साधु सन्त के जीवन-दर्शन से तो परिचित हो सकेगा, जिसमें भारतीय आध्यात्मिक एवं सांस्कृतिक चितनधारा का सजीव-सटीक विश्लेपण करने की इस युग में भी अशेष क्षमता है। आठ सुंदर चित्रों से सज्जित यह पुस्तक भले ही आकर्षक गेटअप, आवरण पृष्ठ, मुद्रण, पृष्ठांकन आदि के अभावों से ग्रस्त हो, तो भी सम्पादक ने भारत के एक आध्यात्मिक गुरु के जीवन-दर्शन द्वारा पाश्चात्य प्रभावित भारतीय समाज को अपने पुरातन (भारतीय) संस्कारों की ओर लौटने की प्रेरणा देने का एक सफल प्रयास किया है, जो स्तुत्य है।

—वीरेन्द्र शर्मा 'कौशिक', अवस्थी वकील का हाता, छतरपुर

रपट—१

राष्ट्रकवि गुप्त जयंतियाँ

● ग्वालियर—गहोई वैश्य समाज और नवयुवक मंडल के संयुक्त तत्वाधान में राष्ट्रकवि श्री मैथिलीशरण गुप्त जयंती के पावन-पर्व पर ११-१४ अगस्त ८३ को विविध साहित्यिक-सांस्कृतिक आयोजन सम्पन्न हुए। प्रथम दिवस श्री गहोई वैश्य छात्रावास में जे० सी० मिल्स के जनसम्पर्क अधिकारी श्री रामसेवक नीखरा के मुख्य आतिथ्य में सम्पन्न साहित्य गोष्ठी में सर्वप्रथम श्री नीखरा द्वारा ही श्री गुप्त के चित्र पर माल्यार्पण किया गया। बाद में श्री गुप्त जी के व्यक्तित्व और कृतित्व पर वक्ताओं ने अनेक आलेखों व संस्मरणों के माध्यम से प्रकाश डाला। १२ व १३ अगस्त को छात्र-छात्राओं की निबंध, कहानी, चित्रकला तथा रांगोली प्रतियोगिताओं का आयोजन हुआ तथा १४ अगस्त को विविध क्रीड़ा, वादविवाद, लोकगीत, लोक-नृत्य आदि प्रतियोगिताओं का सफल आयोजन किया गया। बाद में आयोजित सम्मान समारोह में विजेता छात्र-छात्राओं को पुरस्कृत किया गया।

● छतरपुर—राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त माध्यमिक विद्यालय में ११ व १२ अगस्त ८३ को दो दिवसीय गुप्त जयंती समारोह सम्पन्न हुए, जिसमें विविध छात्र-प्रतियोगिताओं—काव्य समस्यापूर्ति, निबंध, वादविवाद आदि का आयोजन हुआ। विजेता सहभागियों का मुख्य अतिथि श्री मुकुंद सखाराम नेवालकर द्वारा पुरस्कृत किया गया। श्री नेवालकर जी की अध्यक्षता में सम्पन्न साहित्य गोष्ठी में सर्वश्री डा० राधावल्लभ शर्मा, डा० नर्मदा प्रसाद गुप्त, वीरेन्द्र शर्मा "कौशिक", रामसेवक गुप्त, डा० गंगाप्रसाद गुप्त "बरसैंया", श्री निवास शुक्ल, नेवालकर आदि वक्ताओं ने श्री गुप्त जी के विविध काव्य-पक्षों पर विस्तृत प्रकाश डालते हुए कहा कि श्री गुप्त जी भारतीय प्राचीन पौराणिक संस्कृति के महान राष्ट्रीय कवि थे। राष्ट्रीय चेतना के इस महाकवि को अपनी मातृ-पितृ भूमि, कर्मभूमि, जन्मभूमि अतिप्रिय थी। उन्होंने स्वर अलापा था—"जिनको न निज देश का अभिमान है।
वे नर नहीं, पशु तुल्य हैं, मृतक समान हैं॥

श्री 'बरसैंया' जी के संचालन में सम्पन्न हुई इस विचार-गोष्ठी के बाद ही सुकवि श्री श्रीनिवास शुक्ल की अध्यक्षता तथा श्री सईद बख्श खैयाम के संचालन मे सम्पन्न हुई सरस काव्य-गोष्ठी में सर्वश्री रामनाथ गुप्त 'हरिदेव' कृष्णकवि, हल्काई सोनी, गोविंददास सरावगी, शारदाप्रसाद उदानिया 'मनोज' डा० नर्मदा प्रसाद गुप्त, श्रीनिवास शुक्ल, श्री प्रकाश पटैरिया, नवलकिशोर 'मायूस' अजय 'उर्मिल' 'ललितेश', रत्नेश, खैयाम आदि ने काव्यात्मक श्रद्धांजलियां श्री गुप्त को अर्पित कीं।

इस आयोजन के अंतर्गत ही दो महत्वपूर्ण प्रस्ताव परित किए गए :—

(१) सन् १९८६ में ही गुप्त जन्म शताब्दी-समारोह पूर्ण राष्ट्रीय गौरव सहित आयोजित किया जाए;

(२) गुप्त-साहित्य-ग्रंथावली प्रकाशित कर साधारण मूल्य पर सर्व सामान्य को उपलब्ध करायी जाए।

विद्यालय प्रबन्ध-समिति ने श्री गुप्त जी की मूर्ति स्थापना सहित उक्त दोनों कार्य सम्पादित कराने का संकल्प व्यक्त किया।

● **चिरगांव**—११ अगस्त ८३ को विद्यालयीन छात्र-छात्राओं, शिक्षकों एवं नागरिकों का जुलूस प्रातःकालीन वेला में राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त के समाधिस्थल पर गया और समाधि पर पुष्पांजलियाँ अर्पित की गईं। रात्रि में स्थानीय श्री शाहला चंद शिशुमंदिर के प्रांगण में राष्ट्रकवि श्री गुप्त जी को एक सरस काव्य गोष्ठी में हार्दिक एवं भावपूर्ण काव्यांजलियाँ, कवियों द्वारा अर्पित की गईं। अध्यक्षता श्री बच्चीलाल गुप्त योगेन्द्र ने।

● **गोहद (भिण्ड)**—श्री मैथिलीशरण गुप्त जयंती के शुभ पर्व पर गहोई वैश्य समाज के तत्त्वावधान में निबंध, सामान्य ज्ञान एवं काव्य प्रतियोगिताओं का आयोजन हुआ। श्री प्रभुदयाल कुचमा की अध्यक्षता में सम्पन्न इस गुप्त-जयन्ती-समारोह की प्रतियोगिताओं के विजेताओं को श्री बिहारीलाल सोनी द्वारा पुरस्कृत किया गया।

● **सतना**—राष्ट्रकवि स्वर्गीय मैथिलीशरण गुप्त की ९७ वीं जयंती के शुभ अवसर पर श्रद्धांजलियाँ अर्पित करने हेतु ११ अगस्त; ८३ को दो आयामी कार्यक्रम सम्पन्न हुए। डा० परमलाल गुप्त के संचालन में सम्पन्न प्रथम आयाम के रूप में आयोजित विचार गोष्ठी की अध्यक्षता की भूतपूर्व विधान सभाध्यक्ष (विंध्य प्रदेश) श्री शिवानन्द जी ने और मुख्य अतिथि थे बंगलूर विश्वविद्यालय के हिन्दी विभागाध्यक्ष एवं विद्वान साहित्यकार डा० सरगु-कृष्णमूर्ति। डा० कृष्णमूर्ति ने इस अवसर पर कहा कि विशद सामान्य भावना के महान प्रतीक श्री गुप्त जी देश के ही नहीं विश्व के महाकवि थे, जिनके

काव्य में राष्ट्रीय और प्राचीन सांस्कृतिक गौरव कूट-कूट कर भरा हुआ था। महाराजा महाविद्यालय के हिन्दी विभागाध्यक्ष डा० गंगाप्रसाद बरसैंया ने कहा कि श्री गुप्त जी की प्रत्येक रचना उन्हें महान् बनाने हेतु पर्याप्त है। आगामी सन् १९८६ में उनकी जन्म शताब्दी सम्पूर्ण देश में उल्लास और उत्साह पूर्वक मनाई जानी चाहिए। प्रो० डा० कृष्णकांत पाण्डेय ने उन्हें सतत् प्रासंगिक और जनता तथा राष्ट्र का ऐसा कवि बताया जो सदैव संघर्ष की प्रेरणा देता रहता है। अपने अध्यक्षीय उद्‌बोधन में श्री शिवानंद जी ने कहा कि श्री गुप्त जी निर्भीक किंतु सरल व्यक्तित्व के राष्ट्रीय कवि थे, जिनके काव्य की प्रासंगिकता सदैव महत्वपूर्ण रहेगी। दूसरे चरण के तहत् सम्पन्न कवि-सम्मेलन में सर्वश्री शिवकुमार 'अर्चन', सुमेरसिंह 'शैलेश', देवेन्द्र पाठक, सन्यासी, मुकुल तिवारी, आनन्द निर्मल जैन आदि कवियों ने सरस काव्यांजलियाँ श्री गुप्त के चरणों में अर्पित की।

● **दतिया**—१२ अगस्त, ८३ को श्री मैथिलीशरण गुप्त स्मृतिदिवस गुप्त जी के सुपुत्र श्री उर्मिला चरण गुप्त की अध्यक्षता और जिलाधीश श्री मोहन गुप्त के मुख्य आतिथ्य में सम्पन्न हुआ, जिसमें शिवाजी विश्वविद्यालय की हिन्दी स्नातकोत्तर (एम० ए०) परीक्षा १९८३ में सर्वोच्च स्थान पाने वाली छात्रा कु० इला दीक्षित को राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त स्मृति पुरस्कार (गहोई वैश्य समाज दतिया द्वारा संचालित) से सम्मानित किया गया। द्वितीय चरण में सम्पन्न हुई अभिनव गीत-गायन गोष्ठी जिसमें कु० गीता गोस्वामी, कु० रजनी पुरोहित, कु० रेखा गुप्ता, कु० रंजना गुप्ता व सीताराम तिवारी आदि ने सुकवि की 'साकेत' 'यशोधरा' 'भारत-भारती' के सुंदर काव्यांशों का सरस गायन प्रस्तुत किया। अंतिम चरण के रूप में आयोजित परिचर्चा गोष्ठी का विषय था—"गुप्त जी के कृतित्व की प्रासंगिकता।" इस विषय पर बोलते हुए सर्वश्री डा० कृष्णविहारी लाल पाण्डेय, जगदीश प्रसाद सुहाने, डा० आर० पी० गुप्ता, रमाकांत राय, राधारमण वैद्य, सतीशचन्द्र शर्मा, डा० हरिहर गोस्वामी, वासुदेव गोस्वामी तथा शफीउल्ला कुरेशी आदि सभी वक्ताओं (श्री सुहाने को छोड़कर) ने गुप्त जी के व्यक्तित्व व कृतित्व को प्रासंगिक बताया। अन्त में अध्यक्षीय पद से बोलते हुए गुप्त जी के सुपुत्र श्री उर्मिला चरण गुप्त ने चुटकी ली—"दद्दा आपके लिए कैसे भी हों, मेरे लिए तो सदैव ही प्रासंगिक रहेंगे।" प्रो० आर० के० गुप्ता द्वारा संचालित और श्री सूरज प्रकाश बडैरिया द्वारा संयोजित इस भव्य आयोजन से प्रभावित हो श्री उर्मिलाचरण जी ने दिसम्बर में दतिया में गुप्त जी की काव्य कृतियों की प्रदर्शनी लगाने की घोषणा की।

—प्रस्तुति—वीरेन्द्र शर्मा 'कौशिक'

रपट २

बुन्देलखण्ड साहित्य अकादमी, छतरपुर का अभिनव आयोजन

बुन्देलखण्ड साहित्य अकादमी के तत्त्वावधान में हर वर्ष की भांति स्थानीय अग्रवाल धर्मशाला ट्रस्ट की ओर से बुन्देलखण्ड के तीन सुकवियों सर्वश्री राजकुमार तिवारी सुमित्र (जबलपुर), रामेन्द्र त्रिपाठी (राठ) तथा रामाधार त्रिपाठी (देवेन्द्रनगर) का साहित्यिक अभिनन्दन किया गया। अभिनन्दन समारोह की अध्यक्षता भूतपूर्व स्पीकर श्री मुकुंद सखाराम नेवालकर ने की। । तुलसी जयंती पर आयोजित इस समारोह का सफल आयोजन दो चरणों में सम्पन्न हुआ। प्रथम चरण के तहत् सम्पन्न हुई काव्य-गोष्ठी का संचालन छतरपुर के सुकवि श्री सुरेन्द्र शर्मा 'शिरीष' ने किया जिसका शुभारम्भ किया श्री रामनाथ गुप्त 'हरिदेव' ने गणेश एवम् वाणी वन्दना प्रस्तुत करके। अकादमी अध्यक्ष डा० नर्मदा प्रसाद गुप्त ने तीनों अतिथि कवियों का परिचय देते हुए अकादमी की कवि-अभिनन्दन की इस अभिनव योजना का संक्षिप्त विवरण प्रस्तुत करके कवित्रयी को माल्यार्पण किया। तदुपरांत कवि श्री आदित्य ओम ने सटीक व्यंग्य पढ़ा—

कैसा आश्चर्य है कि लोग स्वतन्त्रता दिवस शान से मना रहे हैं।
जबकि स्वतन्त्रता सेनानी आत्महत्या को विवश हो रहे हैं।

श्रीमती कांति खरे ने महाकवि तुलसी को आत्मिक श्रद्धांजलि अर्पित करते हुए एक लम्बी कविता का सरस मधुर गायन किया—मानसकार !

जरा सुन जाना, रामायण की राम कहानी !
....
तुलसी, तेरी रामायण मन्दिर में बन्द हो गई है।

इन्हीं पंक्तियों से अपने हृदयोच्छ्वासों को संयोजित करते हुए युवक कवि श्री प्रकाश पटैरिया 'हृदयेश' ने गाया—

"तुलसी के काव्य कटोरे से,
कविता-सरिता गंगा बन बह निकली।"

देवेन्द्रनगर से पधारे अतिथि कवि श्री रामाधार त्रिपाठी का स्वर था—

जिसमें निहित जगत का सुख हो,
उसको हम आराम कहेंगे।
श्रम सीकर से नहा रहा जो,
उसको अब हम राम कहेंगे।।"

इस व्यंग्य को और भी पैनेपन से उभारा श्री जगदीश खरे ने जिनका स्वर इन शब्दों में प्रस्फुटित हुआ—

"अल्पसंख्यकों के हितों की रक्षा करने का किया है वायदा हमने,
मुट्ठी भर पूंजीपति ही तो बढ़ रहे हैं।"

श्री जगदीश खरे के व्यंग की चुभन को श्री जगन्नाथ प्रसाद 'सुमन' ने अपनी काव्य-पंक्तियों से तुलसी को श्रद्धा सुमन अर्पित करते हुए मरहम लगाई—

"पोथी रामायण की बांची,
खुली ज्ञान की रांची।"

श्री सुरेन्द्र तिवारी ने अपने दोहे इस प्रकार पढ़े—

"चाँदी नाई दांत हैं, कंचन नाई देह।
लोभी के जीमे भला, काये न बाढ़े नेह।।"
"बूंदें पानी के जे बरसें, पीर उठे भीतर से।"
"मउआ के टपका लगें गुरयारे से बैन।
जिउरा छिद छिद जात हैं, अजब कटीले नैन।"

अतिथि कवि श्री रामेन्द्र त्रिपाठी ने तुलसी के प्रति अपनी काव्यांजलि प्रस्तुत करते हुए सरस वाणी में पढ़ा—

"राम के जो दास थे, सो पास थे अनाम से।
कविकुल गुरु प्रणम्य हो गए प्रणाम से।।
ग्राम ग्राम खींच दी लकीरे राम नाम की।
मैथिलीशरण हुए सदेह स्वर्णधाम से।।"

दूसरा गीत—"मंदिर के वासी फूलों से कोई श्रृंगार नहीं होता।
देना हो तो ऐसा रस दो जिसका व्यापार नहीं होता।।

बड़ी देर से कवि गोष्ठी को संचालित कर रहे श्री सुरेन्द्र शर्मा 'शिरीष' को जब आमंत्रित किया गया तो उन्होंने अपना सरस गीत इस प्रकार सुनाया—

"भारती की वीणा के सबसे सुरीले तार हो तुम।
जो समूची सृष्टि में गूंजी मधुर झंकार हो तुम।।"

अतिथि कवि श्री राजकुमार तिवारी 'सुमित्र'—

"कहीं पढ़ा था गुरु बहुत बड़े होते थे।
कहीं सुना था गोविंद के साथ खड़े होते थे।।"

अन्य स्थानीय कवि-शायरों में सर्वश्री संतोषसिंह बुन्देला, कृष्णकवि, नर्मदा प्रसाद गुप्त, अजय 'उर्मिल' 'शिवनारायण खरे, कमालुद्दीन निजामी, सईद बख्श खैयाम, ललितेश, रत्नेश बाबूजी खरे आदि ने भी सरस काव्य-पाठ करते हुए महाकवि तुलसी के प्रति भावांजलियाँ अर्पित की। गोष्ठी का समा-

पन हुआ सुकवि द्वय सर्वश्री रामेन्द्र त्रिपाठी और सुमित्र की इन सरस गीत एवं व्यंग्य पंक्तियों से—

रामेन्द्र—"महक रहे बेर से,
पके पके बेर से।
मैं कर दूँगा तुमको वसन्त ॥
तु आजा कूद मुँडेर से ॥"

सुमित्र—"मरण आया शरण,
मैंने कहा जा अमर हो जा।"

विचार गोष्ठी

दूसरे चरण में सम्पन्न हुई अपने किस्म की अभिनव और अनोखी विचार-गोष्ठी का विषय था—"वर्तमान राष्ट्रीय एकता और महाकवि तुलसी", जिसकी अध्यक्षता कर रहे थे विध्य कोकिल श्री भैयालाल व्यास और संचालन भार श्री वीरेन्द्र शर्मा "कौशिक' के हाथों में था। विचार-गोष्ठी की शुरूआत वयोवृद्ध कवि श्री रामनाथ गुप्त 'हरिदेव' की वन्दना से हुई। डा० नर्मदा प्रसाद गुप्त ने समारोह का परिचयात्मक विवरण प्रस्तुत करते हुए कहा कि तुलसी की हर चौपाई मन्त्र है जो राष्ट्रीय एकता के सन्दर्भ में औषधि की भांति है। श्री अजय 'उर्मिल' ने अपने आलेख—"राष्ट्रीय सन्दर्भ में तुलसी की प्रासंगिकता" में कहा कि आलोचकों द्वारा उन्हें पथ भ्रष्टक कहना अति निंदनीय है। डा० गंगा प्रसाद गुप्त 'बरसैंया' ने "आज का सामाजिक विघटन और तुलसी" विषय पर बोलते हुए कहा कि तुलसी ने समाज के उच्च शिखर पर ले जाने के लिए ही उत्कृष्ट पात्रों का सृजन किया था पर आज का साहित्यकार सत्य कहने-लिखने का साहस ही नहीं कर पा रहा है। श्री वीरेन्द्र शर्मा "कौशिक" का कथन था कि मन्त्रों सा व्यापक प्रभाव रखने वाला तुलसी-साहित्य सबके गले का हार बना हुआ है। श्री श्रीनिवास शुक्ल ने अपने निबन्ध—"वर्तमान अलगाववाद और तुलसी" में कहा कि तुलसी का व्यक्तित्व और कृतित्व इतना महान और व्यापक प्रभाव वाला था कि सभी के हृदयों में उसने यह भाव ही बिठला दिया था कि एकात्मकता हमारी भारतीय संस्कृति का सबसे बड़ा गुण था। इसीलिए वे सभी अलगाववादी के बावजूद भी सामाजिक, साहित्यिक, धार्मिक सांस्कृतिक, नैतिक और राजनैतिक समन्वयवाद को अपने काव्य के माध्यम से भारतीय समाज में प्रतिष्ठित कर सके थे। उनकी यह चौपाई—

"सियाराम मय सब जग जानी। करहुँ प्रणाम जोर जुग पानी ॥"

आज भी हमारे समाज को आध्यात्मिक शक्ति से भर रही है जो हर अलगाववाद से दूर रहने की प्रेरणा समाज को दे रही है। डा० प्रमोद पाण्डेय कह रहे थे—तुलसी का 'रामचरित मानस' ही नहीं, वरन सम्पूर्ण साहित्य ही मात्र राष्ट्रीय एकता का नहीं, बल्कि विश्व एकता के आदर्श प्रस्तुत करता है। महाकवि निराला ने कहा था कि हिन्दी में तुलसी सा कवि होने से ही हिन्दी राष्ट्रभाषा पद की अधिकारिणी है। इससे बड़ा राष्ट्रीय एकता का प्रमाण पत्र तुलसी-काव्य के लिए और क्या हो सकता है? श्री के० पी० मिश्र ने राष्ट्रीय एकता की दृष्टि से बाल्मीकि और तुलसी का तुलनात्मक विवेचन किया। श्री शिवनारायण खरे ने "वर्तमान राजनीति और तुलसी" विषय पर बोलते हुए कहा कि तुलसी मार्क्स के बहुत पहले ही रामराज्य में समाजवाद को देख चुके थे। इसी रामराज्य की स्थापना का स्वप्न महात्मा गांधी ने देखा था। राम द्वारा राक्षसों का नाश ही पूंजीवादी व्यवस्था को समाप्त करना था। तुलसी का राम-रावण युद्ध ही वर्तमान समाजवाद और पूंजीवाद का संघर्ष है। अन्तिम वक्ता थे अहमदाबाद (गुजरात) के महा मंडलेश्वर जी। उन्होंने देश में व्याप्त नैतिक पतन के समाप्त करने की आवश्यकता प्रतिपादित की। अपने अध्यक्षीय भाषण में श्री भैयालाल व्यास ने "मध्ययुगीन धर्म और तुलसी" विषय पर विस्तृत प्रकाश डाला। भूतपूर्व आयुक्त श्री कन्हैया लाल अग्रवाल ने सबके प्रति आभार व्यक्त किया।

● प्रस्तुति—वीरेन्द्र शर्मा 'कौशिक'

रपट—३

महोबा का आल्ह महोत्सव

उस दिन महोबा-महोत्सव के अन्तर्गत जगनिक शोध संस्थान, महोबा (हमीरपुर) के तत्वावधान में आयोजित 'मामुलिया' (त्रैमासिक) के आल्ह-खण्ड विशेषांकों के विमोचन समारोह और आल्हखण्ड-सम्मेलन में भाग लेने हेतु महोबा गया हुआ था। डॉ० नर्मदा प्रसाद जी गुप्त साथ थे ही। कजलिया उत्सव व मेला देखने निकल पड़ा। देखा सामने से हरी साड़ियों में शस्त्र-सज्जित नारी-सेना की एक टुकड़ी राजकुमारी चन्द्रावलि के नेतृत्व में चली आ रही है जिसके पीछे दिल्ली के सम्राट पृथ्वीराज की सेना और उसके भी पीछे जोगिया भेषधारी ऊदल और लाखन के नेतृत्व में बहिन चन्द्रावलि की रक्षार्थ आई जोगियों की सेना ने तो मन ही मोह लिया था। मन कल्पना की उड़ाने भरता वर्षों पुरानी कथाओं में खो गया था। तभी मेरे कानों ने सुना—

'देखो शर्मा, उधर देखो ! कौन आ रहा है ?'

सचमुच विशाल व्यक्तित्व के धनी धनुषबाण-धारी आल्हखण्ड काव्य के रचयिता महाकवि जगनिक को भला मैं क्या पहिचानता ? मुझे भौचक्का अपनी ओर निहारते देख प्रश्नकर्त्ता (डॉ० गुप्ता) ही बोले—'यही तो है महाकवि जगनिक जिन्हें डॉ० राम कुमार वर्मा के शब्दों में प्रथम हिन्दी महाकाव्य आल्हखण्ड (परमाल रासो) के रचयिता होने का गौरव मिल चुका है ।'

अब तक हम लोग संगोष्ठी स्थल के सभाभवन तक आ चुके थे । रात्रि के आठ बज गए थे । आकाशवाणी व दूरदर्शन लखनऊ, संगीत नाट्य अकादमी, लखनऊ, एन० आई० पी० व लोकभारती लखनऊ सहित अन्य विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं से आए छाया-चित्रकार आदि अपने-अपने कैमरे चमकाते यथा स्थान ग्रहण कर चुके थे । समारोह के अध्यक्ष डा० कृष्ण दत्त बाजपेई तथा मुख्य अतिथि डा० भागीरथ मिश्र भी आ विराजे । उनके आस-पास डा० बलभद्र तिवारी (सागर), डा० रमेश चन्द्र तिवारी (कन्नौज), डा० हरगोविंद सिंह (राठ), डा० हरिसिंह घोष, डा० नर्मदा प्रसाद गुप्त तथा वीरेन्द्र शर्मा, 'कौशिक' (सभी छतरपुर), डा० उमा शंकर नगायच, डा० वीरेन्द्र निर्झर, डा० श्रीकृष्ण चौरासिया (महोबा) आदि बैठे हुए हैं । मुख्य अतिथियों के दायें कोने पर लखनऊ की नाट्य संगीत अकादमी की सर्वेक्षण अधिकारी श्रीमती (डा०) विजय नरेश बैठीं है तो उनके सामने के दूसरे (बायें) कोने पर अमेरिका से पधारी श्रीमती (डा०) कोरीन शोमर अपने टेपरिकार्डर और कैमरे सहित विराजमान हैं । डा० कृष्ण दत्त बाजपेई द्वारा अध्यक्ष पद ग्रहण करते ही श्री हर प्रसाद जी द्वारा प्रस्तुत वाणी-वन्दना से कार्यक्रम का शुभारम्भ होता है, जिसका संचालन भार संभाला हुआ है श्री वीरेन्द्र शर्मा 'कौशिक' (छतरपुर) द्वारा । डा० बाजपेई ने तब सरस्वती के चित्र को माल्यार्पित कर माँ सरस्वती की अभ्यर्थना कर अपना आसन पुनः ग्रहण किया । डा० वीरेन्द्र 'निर्झर' ने डा० बाजपेई, डा० मिश्र सहित सभी अतिथियों को माला पहिना कर स्वागत किया तथा जगनिक शोध संस्थान का प्रतिवेदन प्रस्तुत किया । डा० नर्मदा प्रसाद गुप्त ने बुन्देलखण्ड साहित्य अकादमी, छतरपुर द्वारा प्रकाशित त्रैमासिक 'मामुलिया' के अब तक प्रकाशित अंकों की कहानी तथा अकादमी का संक्षिप्त परिचय देते हुए मुख्य अतिथि डा० भागीरथ मिश्र से 'मामुलिया' के आल्हखंड विशेषांकों के विमोचन का आग्रह किया । डा० मिश्र ने विशेषांकों के बण्डलों पर बंधे लाल-पीले फीते काटकर विमोचन की प्रक्रिया सम्पन्न की और इसी के साथ वे अंक मंच पर विराजे विद्वानों के हाथों में पहुँचने लगे । उधर डा० गुप्त ने अपना भाषण जारी किया कि 'मामुलिया'

और अकादमी का मुख्य उद्देश्य बुन्देली भाषा, कला, साहित्य, संस्कृति, इतिहास विषयक शोध कर-कराकर बुन्देलखण्ड की सेवा करना है । प्रसन्नता की बात है कि 'मामुलिया' ने अपने दो वर्षीय अल्पकाल में केवल ६ अंक देकर (विशेषतः फाग विशेषांक) ही काफी लोकप्रियता अर्जित की है तथा उसके हर अंक की चर्चा सर्वत्र हुई है । डा० हरगोविंद सिंह ने कहा कि आल्हखण्ड विशेषांकों में सुसंयोजित लगभग २५० पृष्ठीय सामग्री प्रथम बार प्रस्तुत की गई जो एक अभिनव कार्य है । इस बीच ही डा० बाजपेई द्वारा सम्मेलन में आए अल्हैतों (आल्हा गायकों) सर्वश्री उम्मेद जी सागर कनेरा, हर प्रसाद जी, जिया लाल जी पहाड़ी बीर अकोना, परमु राम जी मिहुना आदि का सम्मान शाल-नारियल भेंट कर किया गया ।

तदुपरांत कन्नौज महाविद्यालय के प्रोफेसर डा० रमेश चन्द्र तिवारी ने अपने उद्बोधन में कहा कि महाकवि जगनिक रचित आल्हखंड राष्ट्रीय चेतना का जीवन्त महाकाव्य है जो मानवीय भावों पर शान चढ़ाने की क्षमता रखता है । वह पारिवारिक-सामाजिक सम्बन्धों तथा राष्ट्रीय जन-जागरण का महाकाव्य है और तुलसी के रामचरितमानस से भी अधिक प्रणम्य है । डा० बलभद्र तिवारी का कथन था कि आल्हखंड लोक गाथा काव्य है, महाकाव्य नहीं । इसमें सरलता, गेयता, धारावाहिक कथा प्रवाह के साथ ही साथ नवीनता का सुन्दर शैली में गुम्फन हुआ है जो लोक शैली के अधिक नजदीक है । इसीलिए लोक को यह सर्वाधिक प्रिय है । डा० भागीरथ मिश्र ने कहा है कि उनके अनुमानानुसार 'परमाल-रासौ' जगनिक की रचना हो सकती है । मौखिक होने से उसका रूप लिपिबद्ध करने वालों के मनोनुकूल बनता चला गया और मौखिक लोकगीत गाथा काव्य की परम्परा अनेक रूपों में चलती रही । इस गेय गाथा का सबसे अधिक लोकप्रिय और मान्य रूप वर्तमान आल्हखंड है जिसकी कल्पना और चमत्कार की पर्तों को उधेड़कर उसके भीतर ऐतिहासिक तथ्यों के बीज उजागर किए जा सकते हैं । इस दिशा में प्रयत्न वांछनीय हैं । अमेरिकी विद्वान डा० श्रीमती कोरीन शोमर, सहायक प्राध्यापिका (हिन्दी) कैलिफोर्निया विश्वविद्यालय बर्कले की टिप्पणी थी कि 'आल्हखंड' जैसी लोक-काव्य-कथायें अमेरिका साहित्य में नहीं मिलती । ऐसे भारतीय साहित्य को अमेरिकी बड़े चाव से पढ़ते सुनते हैं । इसे उनकी भाषा में पहुँचने के उद्देश्य से ही मैं भारत भ्रमण पर आई हूँ । डा० कृष्ण दत्त बाजपेई ने अपने अध्यक्षीय भाषण में कहा कि आल्हखण्ड निश्चय ही एक लोकप्रिय महाकाव्य है जिसके सम्बन्ध में 'मामुलिया' द्वारा निकाले गए आल्हखंड विशेषांक निश्चय ही महत्वपूर्ण ऐतिहासिक दस्तावेज सिद्ध होंगे और इनसे आल्ह-युगीन इतिहास की खोज

में अमूल्य योगदान मिलेगा। प्राचार्य श्री उमा शंकर नगायच के आभार-प्रदर्शन के बाद यह गोष्ठी इस सूचना के साथ समाप्त हुई कि इसका अगला चरण दूसरे दिन आयोजित 'आल्हा-गायन तथा प्रश्नोत्तर सम्मेलन' से फिर शुरू होगा।

अगले दिन सुप्रसिद्ध अल्हैत श्री आत्मा राम जी की अध्यक्षता में कुमारी वंदना जैन के आलेख—'आल्हखंड की लोकप्रियता' के पठन से 'आल्हागायन व प्रश्नोत्तर सम्मेलन' का शुभारम्भ हुआ। कु० जैन ने बताया कि आल्हा-ऊदल की वीरता का चित्रांकन करने वाला यह काव्य बुन्देलखंड ही में नहीं, देश के विभिन्न भागों में भी लोकप्रिय है। डा० हरगोविंदसिंह ने अपने भाषण में कहा कि आल्हखंड एक अति प्रेरक ग्रन्थ है जो बुन्देलखंड वासियों में आन-बान शान की प्रेरणा देता है। यह ग्रन्थ मनोरंजन, अध्ययन, व्यवहारिक उपयोगिता आदि दृष्टियों से भी बहुत महत्वपूर्ण है। डा० हरिसिंह घोष ने कहा कि आल्ह-खंड युद्ध परक सांस्कृतिक चेतना का अद्‌भुत काव्य है। श्री वीरेन्द्र शर्मा 'कौशिक' ने बताया कि आल्हखंड का नायक ही एक ऐसा जुझारू ऊर्जा और राष्ट्रीय चेतना शक्ति धारी व्यक्तित्व है जिसके यश गायन को अपनी कलम की विजय बनाकर ही जगनिक महाकवि का विशेलषण पा सके। डा० नरेन्द्र विद्यार्थी ने बताया कि महाभारत कालीन पात्रों ने ही अधूरे युद्ध की लालसा-पूर्ति हेतु आल्हा, ऊदल, पृथ्वीराज आदि के रूप में पुनर्जन्म लिया था जिसका वर्णन ही आल्हखंड महाकाव्य में हुआ है।

इन वक्तव्यों के बाद शुरू हुए 'आल्हागायन' में सर्वश्री आशाराम जी, बच्चासिंह जी, विजयसिंह जी, चन्द्रभानुसिंह जी, जयसिंह जी, रामलाल शर्मा; राम अवतार सिंह, श्याम लाल यादव, दिनेश कुमार, राम खिलावन जी, रण विजय सिंह तथा उनकी पार्टियों ने विविध शैलियों में आल्हखंड का सरस मधुर गायन संगीत वाद्यों के साथ प्रस्तुत किया। इन सभी अल्हैतों को शाल-नारियल भेंट कर सम्मानित किया गया। आल्ह-गायन की विविध गायन शैलियो के सम्बन्ध में शुरू हुए प्रश्नोत्तर-सम्मेलन में सर्वश्री डा० नर्मदा प्रसाद गुप्त, डा० वीरेन्द्र निर्झर, डा० रमेश चन्द्र तिवारी, डा० हरगोविंद सिंह, डा० नरेन्द्र विद्यार्थी, डा० हरसिंह घोष, डा० श्रीमती करीन शोमर, कु० वंदना जैन आदि वक्ताओं द्वारा पूछे गए प्रश्नों के उत्तर देते हुए इन अल्हैतो ने बताया कि अगली बार वे इस तैयारी के साथ आवेंगे कि इन प्रश्नों का उत्तर दे सकें। संचालन डा० वीरेन्द्र निर्झर ने किया तथा कृष्ण चौरसिया ने आभार व्यक्त किया।

प्रश्न एक उत्तर अनेक

महोबा-महोत्सव की अभिनव और अनूठी संगोष्ठी थी—'आल्हखंड पर अल्हैतो से प्रश्नोत्तर संगोष्ठी' जिसमें किए गए प्रश्नों के उत्तर अल्हैतों ने दिए पर यह भी स्वीकार किया वे इस संगोष्ठी हेतु आवश्यक अध्ययन और तैयारी के साथ नहीं आए हैं। भविष्य में इस प्रकार तैयारी कर आवेंगे। उनसे किया गया प्रमुख प्रश्न था—आल्हखंड या आल्हा की कोई पांडुलिपि विद्वानों को अभी तक तो प्राप्त हुई नहीं है। आप लोग जो आल्हा गाते हैं, लिखित, मौखिक या प्रकाशित रूप में कैसे, कहाँ प्राप्त हुआ ?

अल्हैतों ने इस प्रश्न के जो उत्तर दिए वे अलग-अलग इस प्रकार थे :—

श्री बच्चा सिंह जी :—गायन शैली गुरुजनों से मिली। इतिहास भी उन्हीं लोग से मिला। ग्रन्थ देखे। जगनिक रायसो तो अब तक अप्राप्त है। पृथ्वी-राजरासो देखा।

श्री विजयसिंह जी :— परम्परा से ही प्राप्त कर गाते चले आ रहे हैं। ध्वनियाँ अवश्य परिवर्तित होती रही है।

श्री चन्द्रभानु सिंह जी :—मैंने किसी से नहीं सुना। स्वप्रेरणा से परम्परागत प्रचलित आल्हा पढ़ते चले आ रहे हैं। धुनें हमारे गुरुजी शिव राम सिंह जी की बनाई हैं। आल्हा की वीरता से ही गायन की प्रेरणा मिलती रहती है।

श्री आशा राम जी :—हमारा ज्ञान व अनुभव गुरुजनों से प्राप्त है। गुरु परम्परा से ही आल्हा हमें मिला है। जो लेख मिले, हमारे गुरुजनों ने उन्हें अपने ढंग से लिखा और हम उसे गाने लगे। अमोलसिंह ने बुन्देलखंड का जो इतिहास लिखा है, बहुत तोड़ मरोड़ कर लिखा है। ५२ लड़ाइयां मात्र काल्प-निक है। ४ लड़ाइयों—मांडों, कीरतसागर, उरई और बेतवावाली ही सत्य है।' ढोलक का गाना करिया और तातिया ने निकाला था। मुख्य पुस्तकें—टीकाराम (उन्नाव), भोला नाथ मिश्र तथा टीकाराम अहेरीपुर-नोन्हा द्वारा लिखित आल्हा ही हमने देखे है।

प्रस्तुति—वीरेन्द्र शर्मा 'कौशिक'

रपट—४

आल्हा प्रतियोगिता : बुन्देली और कन्नौजी जनपदों का सम्मिलन

सांस्कृतिक सुगंधों की नगरी कन्नोज और बुंदेली ऊर्जा का प्रतीक 'आल्हा' दोनों के अनोखे मिलन से स्निग्ध वातावरण। तीन सितम्बर के स्वर्णिम दिन के दस बजे एस० एन० इण्टर कालेज का आल्हाप्रेमियों से उफनाता प्रांगण।

श्री खुरशीद आलम, केन्द्रीय पर्यटन एवं विमानन मन्त्री द्वारा 'आल्हा-प्रतियोगिता' के उद्घाटन मे समारोह का प्रारम्भ। स्वागताध्यक्ष श्री कालीचरण टंडन, डा० जी० के० अग्निहोत्री एवं अन्य आयोजकों ने अतिथिगणों का स्वागत किया। फिर प्रतियोगिता के दोनों चरण रात्रि दो बजे तक। बेपन अल्हैत-दल' जिनमें उत्तरभारत के प्रसिद्ध गायक थे, अपनी-अपनी गायकी से श्रोताओं को सम्मोहित किये रहे। विशेषता यह थी कि इस बार बुंदेलखण्ड को ओजमयी गायकी के धनी अल्हैत भी थे। ऐसा लगता था, जैसे फिर बुंदेलखण्ड कन्नौज से मिल-भेंट रहा हो। भावात्मक एकता का अनुपम दृश्य। इस प्रतियोगिता में पुरस्कृत हुए श्री राजकुमार पांडेय (रायबरेली) प्रथम, श्री ओंकारनाथ अवस्थी (उन्नाव) द्वितीय, श्री गंगेश्वरानंद (उन्नाव) तृतीय एवं बुंदेली क्षेत्र के श्रेष्ठ गायक श्री बच्चा सिंह एवं फर्रुखाबाद जनपद के श्रेष्ठ गायक श्री गंगाराम को विशेष पुरस्कार। डा० नसीम जैदी, जिलाधिकारी फर्रुखाबाद ने श्री रमेश तिवारी द्वारा सम्पादित एक सजी-धजी शोधपरक स्मारिका का विमोचन किया, जो इस समारोह की संग्रहणीय उपलब्धि मानी जा सकती है।

चार सितम्बर को प्रातः दस बजे विचार-गोष्ठि का आयोजन इस वर्ष से एक नयी शुरुआत थी, जिसने इस क्षेत्र के शोधकर्ताओं को आकृष्ट किया। अध्यक्ष थी डा० करीन शोमर, केलिफोर्निया विश्वविद्यालय, अमेरिका और संचालक थे श्री रमेश तिवारी, प्राध्यापक हिन्दी, कन्नौज। सर्वप्रथम बुंदेली के आल्हागायक श्री आशाराम सिंह ने आल्हा की मौखिक परम्परा को पीढ़ी-दर पीढ़ी से जीवित बतलाया, जबकि उन्नाव के श्री ओंकारनाथ अवस्थी ने आल्हकालीन कन्नौज की शासनव्यवस्था को स्पष्ट किया। श्रीबच्चा सिंह का मत कि आल्हा के प्रथम रचयिता व्यास जी थे, एक रहस्यमय किन्तु विवादग्रस्त उद्घाटन था। डा० अवधेश अवस्थी, प्राध्यापक, कन्नौज का कथन था कि यदि 'आल्हा' से छोटी-छोटी बातों पर युद्ध करने की प्रेरणा मिलती है, तो उसे बंद करना चाहिए। फर्रुखाबाद के ऊदलसिंह ने सिद्ध किया कि मलखान चंदेल-चौहानों के युद्ध के समय जीवित थे, जबकि हमीरपुर के सुल्तान सिंह ने कुछ लड़ाइयों को बाद में जोड़ी बताया। डा० महेन्द्रप्रताप सिंह, दिल्ली ने 'जगतराज की दिग्विजय' में लिखित चंदेलों और आल्हा-ऊदल के वर्णन पर प्रकाश डालते हुए कुछ चौंकाने वाले निर्णय लिये। उनके मतानुसार चंदेल क्षत्रिय नहीं थे, ब्रह्म थे। ब्राह्मण और क्षत्रिय के मिलने से ही चंदेल हुए। बनाफर या वह्नि +फर अर्थात् अग्नि से जो फल मिला, उसे बनाफर कहते हैं। आल्हा की मौखिक और लिखित परम्परा को कवि हरिकेश ने मिलाया। लाखन का पिता मुँझराय था। ऊदल की मृत्यु-तिथि सं० १२५० के माघ की एकादशी थी। ये सभी निर्णय संभवतः एक ही ग्रंथ—'जगतराज की दिग्विजय' पर आधारित थे, परन्तु जब तक उन्हें हर कसौटी पर कसा नहीं जाता, तब तक वे इतिहास में मान्य नहीं हो सकते। विद्वानों को इन पर विचार करना चाहिए।

अन्त में डा० करीन शोमर ने कहा कि आल्हा एक समुद्र है अर्थात् उसका क्षेत्र विस्तृत है। आल्हा जो मात्र एक सैनिक था, उसे नरेश कहा गया है क्योंकि उसकी वीरता प्रमुख थी। हमारे देश (अमेरिका) में पिता और दादा का नाम ही ज्ञात रहता है, किन्तु यहाँ (भारत में) पूरी वंशावली रहती है। गोष्ठी में महोबा के श्री श्रीकृष्ण चौरसिया, संतोष पटैरिया और हमीरपुर के श्री महेश प्रसाद अवस्थी उपस्थित थे।

—सन्तोष पटैरया, डाक बंगला मार्ग, महोबा, उ. प्र.

रपट—५

सीता निर्वासन का विमोचन

मध्य भारतीय हिन्दी साहित्य सभा ग्वालियर की ओर से शंकर नगाइच, प्राचार्य, डी० ए० वी० इण्टर कालेज, महोबा का सम्मान एवं उनकी काव्य कृति 'सीता निर्वासन' का विमोचन शासकीय महाविद्यालय मुरैना के हिन्दी विभागाध्यक्ष एवं प्रख्यात आलोचक डा० कृष्ण चन्द्र वर्मा ने किया। इस अवसर पर 'सीता निर्वासन' पर श्री बियोगी हरि की भूमिका को साहित्यिक मंत्री शिव बरुआ द्वारा पढ़ा गया। इस क्रम में महोबा से पधारे गया प्रसाद त्रिपाठी, अध्यक्ष, जगनिक शोध संस्थान व मंत्री डा० वीरेन्द्र 'निर्झर', संतोष पटैरया, डा० पूनम चन्द्र तिवारी, ग्वालियर एवं शिव बरुआ जी ने 'सीता निर्वासन' काव्यकृति पर अपने विचार प्रस्तुत किया। अध्यक्षीय भाषण में डा० कृष्ण चन्द्र वर्मा ने कहा कि 'सीता निर्वासन' भारतीय संस्कृति व संस्कार की श्रेष्ठतम् कृति है। कवि ने इस काव्य में सीता निर्वासन की कथा को आज के बौद्धिक धरातल पर कसते हुए मानवीय आदर्शों को स्थापित किया है।

श्री नगाइच जी के अनुसार डा० भगवानदीन चौरसिया, एम० डी० (एनटॉमी विभाग, आर० जे० मेडिकल कालेज, ग्वालियर) उनकी पहली

कृति हैं और 'सीता निर्वासन' दूसरी। इस कार्यक्रम के बीच श्री नगाइच जी ने अपनी पहली कृति को दूसरी कृति भेंट की। इस अवसर पर माता प्रसाद शुक्ल के संचालन में 'इंगित' काव्य गोष्ठी भी हुई, जिसमें स्थानीय एवं महोबा से पधारे कवियों ने काव्य-पाठ किया। गोष्ठी में नगाइच जी ने 'सीता निर्वासन' के 'आदेश खंड' का काव्य-पाठ किया। अन्त में श्री जयन्ती अग्रवाल व सभा के मंत्री आजाद रामपुरी ने आभार व्यक्त किया। डा० डी० एस० बड़कुर ने सम्पूर्ण कार्यक्रम को टेपांकित किया।

—संतोष पटैरया

अकादमी के अभिनव प्रकाशन

बुंदेली फागों के उद्भव, विकास, भाव, भाषा, संस्कृति एवं ईसुरी, गंगाधर व्यास, ख्याली तथा अज्ञात फागकारों पर प्रामाणिक सामग्री के लिए एकमात्र ग्रंथ

बुन्देली फाग काव्य : एक मूल्यांकन

सम्पादक : डा० नर्मदा प्रसाद गुप्त
डा० वीरेन्द्र 'निर्झर'

मूल्य : मात्र बीस रुपये

'आल्हा' पूरे देश की ऊर्जा का महाकाव्य बन गया है, पर उसकी कथा, वस्तु, भाव, भाषा, संस्कृति, गायकी पर कोई ग्रंथ नहीं है। प्रामाणिक शोधपरक सामग्री के साथ उसकी विविध वर्णनायें उपजीवी काव्य-सम्पदा। हिन्दी के प्रथम कवि जगनिक और आल्हखण्ड पर प्रथम ग्रंथ

आल्हखंड : शोध और समीक्षा

सम्पादक : डा० नर्मदा प्रसाद गुप्त
डा० वीरेन्द्र 'निर्झर'

मूल्य : मात्र चालीस रुपये

बुंदेलखण्ड और बुंदेली का एकमात्र प्रकाशन-संस्थान

बुंदेलखण्ड साहित्य अकादमी

छतरपुर-४७१००१ (म० प्र०)
पंजीयन १०६२५/८२